भैरवी

13



सोहनलाल द्विवेदी

भैरवी

[राष्ट्रीय जागरण के गीत]

सोहनलाल द्विवेदी
एम० ए०, एल-एल० बी०

प्रकाशक
इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद
१६४२

प्रथम संस्करण
१ जनवरी, १९४१

द्वितीय संस्करण
१ दिसम्बर, १९४२

PRINTED AND PUBLISHED BY K. MITTRA, AT
THE INDIAN PRESS, LIMITED, ALLAHABAD



पूछता सिन्धु था लहरों से क्यों ज्वार अचानक तुम लाईं ?
लहरें बोलीं,—'क्या मनमोहन की वेणु न तुमने सुन पाई ?'—पृष्ठ ६६



समर्पण

बापू !

आज से एक युग पहले अपनी प्राथमिक रचना 'खादी-गीत' आपके हाथों में अर्पित की थी। इसे मैं आपके पावन स्पर्श का प्रसाद ही मानता हूँ कि वह इतनी लोकप्रिय हुई। आज फिर खादी-गीत तथा अन्य कविताओं के संकलन 'भैरवी' को आपके पुण्य-पाणि में समर्पित करता हूँ। यदि एक भी गीत अच्छा बन पड़ा हो, तो यह प्रयास सफल मानूँगा।

—सोहनलाल द्विवेदी

निवेदन

मुझे आज इन कविताओं के संबंध में कुछ नहीं कहना, जो कुछ कहना है, वह ये कविताएँ स्वयं आपसे कहेंगी।

— सोहनलाल द्विवेदी

'अधिकार' आफिस,
लखनऊ।
१।१।४१

आभार

भैरवी का हाथोहाथ इतना स्वागत होगा, इसकी मुझे आशा नहीं थी। दूसरे ही वर्ष भैरवी का दूसरा संस्करण प्रकाशित हो रहा है, इसका श्रेय इसके उन्नतमना पाठकों को है।

समीक्षा एवं सम्मतियाँ लिखकर, जिन उदारमना विद्वानों ने भैरवी का गौरव बढ़ाया है, उनके प्रति कृतज्ञता से मेरा मस्तक नत है।

जिस आदर और स्नेह से बापू ने भैरवी को अपनाया, पढ़ा, और प्रसन्नता प्रकट की उसे मैं अपना परम सौभाग्य मानता हूँ।

बापू ने तो कुछ वाक्यों से ही मुझे आत्मीयता के धागे में लिया। उसे बाँध सब मैं यहाँ कैसे लिखूँ?

उन्होंने भैरवी पर सम्मति लिखकर भी देने को कहा था, किन्तु, आज जब यह दूसरा संस्करण प्रकाशित हो रहा है, तब तो बापू जेल में बन्द हैं।

सम्मति कैसे भेजें, और मैं मँगाऊँ भी तो किस प्रकार?

अतः, यह संस्करण बापू के मौन आशीर्वाद के साथ प्रकाशित किया जा रहा है।

१ दिसम्बर, ४२
प्रयाग

—सोहनलाल द्विवेदी

विषय-सूची

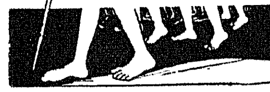


बंदिनी मा को न भूलो, राग में जब मत्त भूलो ।—पृष्ठ १



पूजा-गीत

वंदना के इन स्वरों में, एक स्वर मेरा मिला लो।
वंदिनी मा को न भूलो,
राग में जब मत्त झूलो;
अर्चना के रत्नकण में, एक कण मेरा मिला लो।
जब हृदय का तार बोले,
शृङ्खला के बंद खोले;
हों जहाँ बलि शीश अगणित, एक शिर मेरा मिला लो।



युगावतार गांधी

चल पड़े जिधर दो डग, मग में
चल पड़े कोटि पग उसी ओर,
पड़ गई जिधर भी एक दृष्टि
गड़ गये कोटि दृग उसी ओर;

जिसके शिर पर निज धरा हाथ
उसके शिर-रक्षक कोटि हाथ,
जिस पर निज मस्तक झुका दिया
झुक गये उसी पर कोटि माथ;

हे कोटिचरण, हे कोटिबाहु!
हे कोटिरूप, हे कोटिनाम!
तुम एकमूर्ति, प्रतिमूर्ति कोटि
हे कोटिमूर्ति, तुमको प्रणाम!

युग बढ़ा तुम्हारी हँसी देख
युग हटा तुम्हारी भृकुटि देख,
तुम अचल मेखला बन भू की
खींचते काल पर अमिट रेख;

तुम बोल उठे, युग बोल उठा
तुम मौन बने, युग मौन बना,
कुछ कर्म तुम्हारे संचित कर
युगकर्म जगा, युगधर्म तना;

युग - परिवर्त्तक, युग - संस्थापक
युग - संचालक, हे युगाधार !
युग - निर्माता, युग - मूर्ति ! तुम्हें
युग - युग तक युग का नमस्कार !

तुम युग-युग की रूढ़ियाँ तोड़
रचते रहते नित नई सृष्टि,
उठती नवजीवन की नींवें
ले नवचेतन की दिव्य - दृष्टि;

धर्माडंबर के खँडहर पर
कर पद - प्रहार, कर धराध्वस्त
मानवता का पावन मंदिर,
निर्माण कर रहे सृजनव्यस्त !

बढ़ते ही जाते दिग्विजयी !
गढ़ते तुम अपना रामराज,
आत्माहुति के मणिमाणिक से
मढ़ते जननी का स्वर्णताज !

तुम कालचक्र के रक्त सने
दशनों को कर से पकड़ सुदृढ़,
मानव को दानव के मुँह से
ला रहे खींच बाहर बढ़ बढ़;

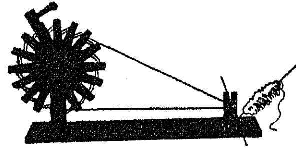
पिसती कराहती जगती के
प्राणों में भरते अभय दान,
अधमरे देखते हैं तुमको,
किसने आकर यह किया त्राण ?

दृढ़ चरण, सुदृढ़ करसंपुट से
तुम कालचक्र की चाल रोक,
नित महाकाल की छाती पर
लिखते करुणा के पुण्य श्लोक !

कँपता असत्य, कँपती मिथ्या,
बर्बरता कँपती है थरथर !
कँपते सिंहासन, राजमुकुट
कँपते, खिसके आते भू पर,

हैं अस्त्र - शस्त्र कुंठित लुंठित,
सेनायें करती गृह - प्रयाण !
रणभेरी तेरी बजती है,
उड़ता है तेरा ध्वज निशान !

हे युग - द्रष्टा, हे युग - स्रष्टा,
पढ़ते कैसा यह मोक्ष - मंत्र ?
इस राजतंत्र के खँडहर में
उगता अभिनव भारत स्वतंत्र !



खादी-गीत

खादी के धागे धागे में
अपनेपन का अभिमान भरा,
माता का इसमें मान भरा
अन्यायी का अपमान भरा;

खादी के रेशे रेशे में
अपने भाई का प्यार भरा,
मा - बहनों का सत्कार भरा
बच्चों का मधुर दुलार भरा;

खादी की रजत चंद्रिका जब
आकर तन पर मुसकाती है,
तब नवजीवन की नई ज्योति
अन्तस्तल में जग जाती है;

खादी से दीन विपन्नों की
उत्तप्त उसास निकलती है,
जिससे मानव क्या पत्थर की
भी छाती कड़ी पिघलती है;

खादी में कितने ही दलितों के
दग्ध हृदय की दाह छिपी,
कितनों की कसक कराह छिपी
कितनों की आहत आह छिपी!

खादी में कितने ही नंगों
भिखमंगों की है आस छिपी,
कितनों की इसमें भूख छिपी
कितनों की इसमें प्यास छिपी!

खादी तो कोई लड़ने का
है जोशीला रणगान नहीं,
खादी है तीर कमान नहीं
खादी है खड्ग कृपाण नहीं;

खादी को देख देख तो भी
दुश्मन का दल थहराता है,
खादी का झंडा सत्य शुभ्र
अब सभी ओर फहराता है!

खादी की गंगा जब सिर से
पैरों तक बह लहराती है,
जीवन के कोने कोने की
तब सब कालिख धुल जाती है!

खादी का ताज चाँद-सा जब
मस्तक पर चमक दिखाता है,
कितने ही अत्याचार-ग्रस्त
दीनों के त्रास मिटाता है;

खादी ही भर भर देश - प्रेम
का प्याला मधुर पिलायेगी,
खादी ही दे दे संजीवन
मुर्दों को पुनः जिलायेगी;

खादी ही बढ़, चरणों पर पड़
नूपुर-सी लिपट मनायेगी,
खादी ही भारत से रूठी
आज़ादी को घर लायेगी;



खादी ही भारत से रूठी
आज़ादी को घर लायेगी। —पृष्ठ ८



गाँवों में

(ग्राम-जीवन का एक रेखा-चित्र)

जगमग नगरों से दूर दूर
हैं जहाँ न ऊँचे खड़े महल,
टूटे-फूटे कुछ कच्चे घर
दिखते खेतों में चलते हल;

पुरई पालों, खपरैलों में
रहिमा रमुआ के नावों में,
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ?
वह बसा हमारे गाँवों में!

नित फटे चीथड़े पहने जो
हड्डी-पसली के पुतलों में,
असली भारत है दिखलाता
नर-कंकालों की शकलों में;

पैरों की फटी बिवाई में,
अन्तस के गहरे घावों में,
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ ?
वह बसा हमारे गाँवों में !

दिन-रात सदा पिसते रहते
कृषकों में औ' मज़दूरों में,
जिनको न नसीब नमक-रोटी
जीते रहते उन शूरों में;

भूखे ही जो हैं सो रहते
विधना के निठुर नियावों में,
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ ?
वह बसा हमारे गाँवों में !

उन रात-रात भर, दिन-दिन भर
खेतों में चलते दोलों में,
दुपहर की चना-चबेनी में
बिरहा के सूखे बोलों में;

फिर भी, ओठों पर हँसी लिये
मस्ती के मधुर भुलावों में,
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ ?
वह बसा हमारे गाँवों में !

अपनी उन रूप कुमारी में
जिनके नित रूखे रहें केश,
अपने उन राजकुमारों में
जिनके चिथड़ों से सजे वेश;

अंजन को तेल नहीं घर में
कोरी आँखों के हावों में,
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ ?
वह बसा हमारे गाँवों में !

उस एक कुएँ के पनघट पर
जिसका टूटा है अर्ध भाग,
सब सँभल-सँभल कर जल भरते
गिर जाय न कोई कहीं भाग;

है जहाँ गड़ारी जुड़ न सकी
युग-युग के द्रव्य अभावों में,
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ ?
वह बसा हमारे गाँवों में !

है जिनके पास एक धोती
है वही दरी, उनकी चादर,
जिससे वह लाज सँभाल सदा
निकला करतीं घर से बाहर,

पुर-वधुओं का क्या हो शृँगार?
जो बिका रईसों-रावों में!
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ?
वह बसा हमारे गाँवों में!

सोने-चाँदी का नाम न लो
पीतल - काँसे के कड़े-छड़े।
मिल जायँ बहूरानी को तो
समझो उनके सौभाग्य बड़े!

राँगे की काली बिछियों में
पति के सुहाग के भावों में।
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ?
वह बसा हमारे गाँवों में!

ऋण-भार चढ़ा जिनके सिर पर
बढ़ता ही जाता सूद-ब्याज,
घर लाने के पहले कर से
छिन जाता है जिनका अनाज;

उन टूटे दिल की साधों में
उन टूटे हुए हियाओं में,
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ?
वह बसा हमारे गाँवों में!

खुरपी ले ले छीलते घास
भरते कोछों की कोरों में,
लकड़ी का बोझ लदा सिर पर
जो कसा मूँज की डोरों में;

उनका अर्जन व्यापार यही
क्या करें ग़रीब उपायों में ?
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ ?
वह बसा हमारे गाँवों में !

आजीवन श्रम करते रहना,
मुँह से न किंतु कुछ भी कहना,
नित विपदा पर विपदा सहना
मन की मन में साधें ढहना;

ये आहें वे, ये आँसू वे
जो लिखे न कहीं किताबों में;
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ ?
वह बसा हमारे गाँवों में !

रामायण के दो-चार ग्रन्थ
जिनके ग्रन्थालय ज्ञान-धाम,
पढ़-सुन लेते जो कभी कभी
हो भक्ति-भाव-वश रामनाम;

जगगति युगगति जिनको न ज्ञात
उन अपढ़ अनारी भावों में,
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ ?
वह बसा हमारे गाँवों में !

चूती जिनकी खपरैल सदा
वर्षा की मूसलधारों में,
ढह जाती है कच्ची दिवार
पुरवाई की बौछारों में;

उन ठिठुर रहे, उन सिकुड़ रहे
थरथर हाथों में पाँवों में,
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ ?
वह बसा हमारे गाँवों में !

जो जनम आसरे औरों के
युग-युग आश्रित जिनकी सीढ़ी,
जिनकी न कभी अपनी ज़मीन
मर-मिट जाये पीढ़ी-पीढ़ी;

मज़दूर सदा दो पैसे के
मालिक के चतुर दुरावों में,
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ ?
वह बसा हमारे गाँवों में !

दो कौर न मुँह में अन्न पड़े
तब भूल जायँ सारी तानें,
कवि पहचानेंगे रूप-परी
नर-कंकालों को क्या जानें ?

कल्पना सहम जाती उनकी
जाते इन ठौर कुठाँवों में,
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ ?
वह बसा हमारे गाँवों में !

हड्डी - हड्डी पसली - पसली
निकली है जिनकी एक-एक,
पढ़ लो मानव, किस दानव ने
ये नर-हत्या के लिखे लेख !

पी गया रक्त, खा गया मांस
रे कौन स्वार्थ के दाँवों में !
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ ?
वह बसा हमारे गाँवों में !

आँखें भीतर जा रहीं धँसी
किस रौरव का बन रहीं कूप ?
लग गया पेट जा पीठी से
मानव ? हड्डी का खड़ा स्तूप !

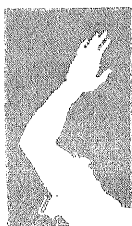
क्यों जला न देते मरघट पर
शव रखा द्वार किन भावों में ?
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ ?
वह बसा हमारे गाँवों में !

जो एक प्रहर ही खा करके
देते हैं काट दीर्घ जीवन,
जीवन भर फटी लँगोटी ही
जिनका पीतांबर दिव्य वसन;

उन विश्व-भरण पोषणकर्त्ता
नर-नारायण के चावों में,
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ ?
वह बसा हमारे गाँवों में !

सेगाँव बनें सब गाँव आज
हममें से मोहन बने एक,
उजड़ा वृन्दावन बस जावे
फिर सुख की वंशी बजे नेक;

गूँजें स्वतंत्रता की तानें
गंगा के मधुर बहावों में।
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ ?
वह बसा हमारे गाँवों में !



झोपड़ियों की ओर

जिनके अस्थि-पंजरों की
नीवों पर ये प्रासाद खड़े,
जिनके उष्ण रक्त के गारे से
गढ़ डाले भवन बड़े ;

जिनकी भूखों की होली पर
मना रहे तुम दीवाली,
जिनसे तुम उज्ज्वल ! देखो,
उनकी देहें काली-काली ;

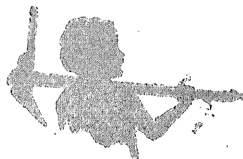
उन भोले-भाले कृषकों की
करुण कथाओं पर पिघलो ।
महलों को भूलो प्यारे !
अब झोपड़ियों की ओर चलो !

फा० २

उनके फटे चीथड़े देखो
अपने वस्त्र विभवशाली,
उनकी रोटी-नमक निहारो
अपनी खीर-भरी थाली ;

उनके छूँछे टेंट निहारो
अपनी बसनी धनवाली,
उनके सूखे खेत निहारो
अपनी उपवन हरियाली !

यह अन्याय अनीति मिटाओ
युग-युग का दुख दैन्य दलो ।
महलों को भूलो प्यारे !
अब झोपड़ियों की ओर चलो !



किसान

ये नभ-चुम्बी प्रासाद-भवन,
जिनमें मंडित मोहक कंचन,
ये चित्रकला-कौशल-दर्शन,
ये सिंह-पौर, तोरन, वन्दन,

गृह—टकराते जिनसे विमान,
गृह–जिनका सब आतंक मान,
सिर झुका समझते धन्य प्राण,
ये आन-बान, ये सभी शान,

वह तेरी दौलत पर किसान !
वह तेरी मेहनत पर किसान !
वह तेरी हिम्मत पर किसान !
वह तेरी ताक़त पर किसान !

ये रंग-महल, ये मान-भवन,
ये लीलागृह, ये गृह-उपवन,
ये क्रीड़ागृह, अन्तर प्रांगण,
रनिवास ख़ास, ये राज-सदन,

ये उच्च शिखर पर ध्वज निशान,
ड्योढ़ी पर शहनाई सुतान,
पहरेदारों की खर कृपाण,
ये आन-बान, ये सभी शान,

वह तेरी दौलत पर किसान !
वह तेरी मेहनत पर किसान !
वह तेरी हिम्मत पर किसान !
वह तेरी ताक़त पर किसान !

ये नूपुर की रुनझुन रुनझुन,
ये पायल की छम छम छम धुन,
ये गमक, मीड़, मीठी गुनगुन,
ये जन-समूह की गति सुनमुन,

ये मेहमान, ये मेज़मान,
साक़ी, सूराही का समान,
ये जलसा महफ़िल, समाँ, तान,
ये करते हैं किस पर गुमान ?

वह तेरी दौलत पर किसान !
वह तेरी मेहनत पर किसान !
वह तेरी रहमत पर किसान !
वह तेरी ताक़त पर किसान !

चलतीं शोभा का भार लिये,
अंगों का तरुण उभार लिये,
नखशिख सोलह शृङ्गार किये,
रसिकों के मन का प्यार लिये,

वह रूप, देख जिसको अजान,
जग सुध-बुध खोता हृदय-प्राण,
विधि की सुन्दरता का बखान,
प्राणों का अर्पण, प्रणय गान,

वह तेरी दौलत पर किसान!
वह तेरी मेहनत पर किसान!
वह तेरी हिकमत पर किसान!
वह तेरी क़िस्मत पर किसान!

सभ्यता तीन बल खाती है,
इठलाती है, इतराती है,
शिष्टता लंक लचकाती है,
झुक झूम भूमि रज लाती है,

नम्रता, विनय, अनुनय महान,
सज्जनता, मधुर स्वभाव बान;
आगत-स्वागत, सम्मान-मान,
सरलता, शील के विशद गान,

वह तेरी दौलत पर किसान !
वह तेरी मेहनत पर किसान !
वह तेरी रहमत पर किसान !
वह तेरी क़ुव्वत पर किसान !

शूरों-वीरों के बाहुदंड,
जिनमें अक्षय बल है प्रचंड,
ये प्रणवीरों के प्रण अखंड,
जो करते भूतल खंड-खंड,

ये योधाओं के धनुष-बाण,
ये वीरों के चमचम कृपाण,
ये शूरों के विक्रमं महान,
ये रणवीरों की विजय-तान,

वह तेरी दौलत पर किसान !
वह तेरी मेहनत पर किसान !
वह तेरी रहमत पर किसान !
वह तेरी ताक़त पर किसान !

ये बड़े बड़े प्राचीन क़िले
जो महाकाल से नहीं हिले,
ये यशःस्तम्भ जो लौह ढले
जिनमें वीरों के नाम लिखे,

ये आर्यों के आदर्श गान,
ये गुप्त-वंश की विजय तान,
ये रजपूती जौहर गुमान,
ये मुग़ल-मराठों के बखान,

वह तेरी दौलत पर किसान !
वह तेरी मेहनत पर किसान !
वह तेरी हिम्मत पर किसान !
वह तेरी जुर्रत पर किसान !

ये इन्द्रप्रस्थ के राज्य-सदन,
पाटलीपुत्र के भव्य भवन,
ये मगध, अयोध्या, ऋषिपत्तन,
उज्जैन अवन्ती के प्रांगण,

वैशाली का वैभव महान,
काशी-प्रयाग के कीर्ति-गान,
लखनवी नवाबों के वितान,
मथुरा की सुख-सम्पति महान,

वह तेरी दौलत पर किसान !
वह तेरी मेहनत पर किसान !
वह तेरी हिम्मत पर किसान !
वह तेरी ताक़त पर किसान !

इस भारत का सुखमय अतीत,
जिसकी सुधि अब भी है पुनीत;
इस वर्तमान के विभव गीत,
जिनमें मन का मधु संगृहीत,

आशाओं का सुख मूर्तिमान,
अरमानों का स्वर्णिम विहान,
प्रतिदिन, प्रतिपल की क्रिया, ध्यान,
उज्ज्वल भविष्य के तान तान,

वह तेरी दौलत पर किसान !
वह तेरी मेहनत पर किसान !
वह तेरी हिम्मत पर किसान !
वह तेरी ताक़त पर किसान !

कल्पना पङ्ख फैलाती है,
छू छोर क्षितिज के आती है,
भावना डुबकियाँ खाती है,
सागर मथ अमृत लाती है,

ये शब्द विहग से गीतमान,
ये छन्द मलय से धावमान,
प्रतिभा की डाली पुष्पमान,
तनता मृदु कविता का वितान,

वह तेरी दौलत पर किसान !
वह तेरी मेहनत पर किसान !
वह तेरी हिम्मत पर किसान !
वह तेरी ताक़त पर किसान !

निर्णय देते हैं न्यायालय,
स्नातक बिखेरते विद्यालय।
कौशल दिखलाते यन्त्रालय,
श्रद्धा समेटते देवालय,

ग्रन्थालय के ये गहन ज्ञान,
संगीतालय के तान-गान,
शस्त्रालय के खनखन कृपाण,
शास्त्रालय के गौरव महान,

वह तेरी दौलत पर किसान !
वह तेरी मेहनत पर किसान !
वह तेरी हिम्मत पर किसान !
वह तेरी क़ुव्वत पर किसान।

ये साधु, सती, ये यती, सन्त,
ये तपसी-योगी, ये महन्त,
ये धनी-गुनी, पण्डित अनन्त,
ये नेता, वक्ता, कलावन्त,

ज्ञानी-ध्यानी का ज्ञान-ध्यान,
दानी-मानी का दान-मान,
साधना, तपस्या के विधान,
ये मानव के बलिदान-गान,

वह तेरी दौलत पर किसान !
वह तेरी मेहनत पर किसान !
वह तेरी हिम्मत पर किसान !
वह तेरी ताक़त पर किसान !

ये घनन-घनन घन घंटारव,
ये झाँझ-मृदंग-नाद भैरव,
ये स्वर्ण-थाल आरती विभव,
ये शङ्ख-ध्वनि, पूजन गौरव,

ये जन-समूह सागर समान,
जो उमड़ रहा तज धैर्य-ध्यान,
केसर, कस्तूरी, धूप दान
ये भक्ति-भाव के मत्त गान,

वह तेरी दौलत पर किसान !
वह तेरी मेहनत पर किसान !
वह तेरी ग़फ़लत पर किसान !
वह तेरी हिम्मत पर किसान !

ये मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर,
पादरी, मौलवी, पण्डितवर,
ये मठ, विहार, गद्दी गुरुवर,
भिक्षुक, सन्यासी, यतीप्रवर,

जप-तप, व्रत-पूजा, ज्ञान-ध्यान,
रोज़ा-नमाज़, वहदत, अजान,
ये धर्म-कर्म, दीनो-इमान,
पोथी पुराण, कलमा-क़ुरान,

वह तेरी दौलत पर किसान!
वह तेरी मेहनत पर किसान!
वह तेरी न्यामत पर किसान!
वह तेरी बरकत पर किसान!

ये बड़े-बड़े साम्राज्य - राज,
युग-युग से आते चले आज,
ये सिंहासन, ये तख़्त-ताज,
ये क़िले दुर्ग, गढ़ शस्त्र-साज,

इन राज्यों की ईंटें महान,
इन राज्यों की नींवें महान,
इनकी दीवारों की उठान,
इनकी प्राचीरों के उड़ान;

वह तेरी हड्डी पर किसान !
वह तेरी पसली पर किसान !
वह तेरी आँतों पर किसान !
नस की ताँतों पर रे किसान !

यदि हिल उठ तू ओ शेषनाग !
हो ध्वस्त पलक में राज्य-भाग,
सम्राट् निहारें, नींद त्याग,
है कहीं मुकुट, तो कहीं पाग !

सामन्त भग रहे बचा जान,
सन्तरी भयाकुल, लुप्त ज्ञान,
सेनायें हैं ढूँढ़ती त्राण;
उड़ गये हवा में ध्वज-निशान !

साम्राज्यवाद का यह विधान,
शासन-सत्ता का यह गुमान,
वह तेरी रहमत पर किसान !
वह तेरी ग़फ़लत पर किसान !

मा ने तुझ पर आशा बाँधी,
तू दे अपने बल की काँधी;
ओ मलय पवन बन जा आँधी,
तुझसे ही गांधी है गांधी,

तुझसे सुभाष है भासमान,
तुझसे मोती का बड़ा मान;
तू ज्योति जवाहर की महान,
उड़ता नभ पर अपना निशान,

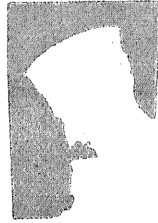
वह तेरी ताक़त पर किसान !
वह तेरी क़ुव्वत पर किसान !
वह तेरी जुरअत पर किसान !
वह तेरी हिम्मत पर किसान !

तू मदवालों से भाग-भाग,
सोये किसान, उठ ! जाग-जाग !
निष्ठुर शासन में लगा आग,
गा महाक्रान्ति का अभय राग !

लख जननी का मुख आज म्लान,
वह तेरा ही धर रही ध्यान,
तेरा लोहा जो सके मान,
किसमें इतना बल है महान ?

रे मर मिटने की ठान-ठान,
ले स्वतन्त्रता का शुभ विहान ।
गूँजे नभ दिशि में एक तान—
जय जन्मभूमि ! जय-जय किसान !

[किसान से]



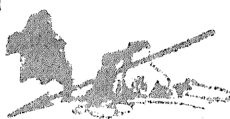
कणिका

उदय हुआ जीवन में ऐसे
परवशता का प्रात।
आज न ये दिन ही अपने हैं
आज न अपनी रात!

पतन, पतन की सीमा का भी
होता है कुछ अन्त!
उठने के प्रयत्न में
लगते हैं अपराध अनंत!

यहीं छिपे हैं धन्वा मेरे
यहीं छिपे हैं तीर,
मेरे आँगन के कण-कण में
सोये अगणित वीर!





हल्दीघाटी

वैरागन-सी बीहड़ बन में
कहाँ छिपी बैठी एकान्त ?
मातः ! आज तुम्हारे दर्शन को
मैं हूँ व्याकुल उद्भ्रान्त !

तपस्विनी, नीरव निर्जन में
कौन साधना में तल्लीन ?
बीते युग की मधुरस्मृति में
क्या तुम रहती हो लवलीन ?

जगतीतल की समर-भूमि में
तुम पावन हो लाखों में,
दर्शन दो, तव चरणधूलि
ले लूँ मस्तक में, आँखों में।

तुममें ही हो गये वतन के
लिए अनेकों वीर शहीद,
तुम-सा तीर्थ-स्थान कौन
हम मतवालों के लिए पुनीत !

आज़ादी के दीवानों को
क्या जग के उपकरणों में ?
मन्दिर मसजिद गिरजा, सब तो
बसे तुम्हारे चरणों में !

कहाँ तुम्हारे आँगन में
खेला था वह माई का लाल,
वह माई का लाल, जिसे
पा करके तुम हो गईं निहाल ।

वह माई का लाल, जिसे
दुनिया कहती है वीर प्रताप,
कहाँ तुम्हारे आँगन में
उसके पवित्र चरणों की छाप ?

उसके पद-रज की क़ीमत क्या
हो सकता है यह जीवन ?
स्वीकृत हो, वरदान मिले,
लो चढ़ा रहा अपना कण कण !

तुमने स्वतन्त्रता के स्वर में
गाया प्रथम प्रथम रणगान,
दौड़ पड़े रजपूत बाँकुरे
सुन-सुनकर आतुर आह्वान !

हल्दीघाटी, मचा तुम्हारे
आँगन में भीषण संग्राम,
रज में लीन हो गये पल में
अगणित राजमुकुट-अभिराम !

युग-युग बीत गये, तब तुमने
खेला था अद्भुत रणरंग,
एक बार फिर, भरो हमारे
हृदयों में मा वही उमंग।

गाओ, मा, फिर एक बार तुम
वे मरने के मीठे गान,
हम मतवाले हों स्वदेश के
चरणों में हँस हँस बलिदान !



राणा प्रताप के प्रति

कल हुआ तुम्हारा राजतिलक
बन गये आज ही वैरागी ?
उत्फुल्ल मधु-मदिर सरसिज में
यह कैसी तरुण अरुण आगी ?

क्या कहा, कि—,
'तब तक तुम न कभी,
वैभव सिंचित शृङ्गार करो'
क्या कहा, कि—,
'जब तक तुम न विगत—
गौरव स्वदेश उद्धार करो !'

माणिक मणिमय सिंहासन को
कंकण पत्थर के कोनों पर,
सोने-चाँदी के पात्रों को
पत्तों के पीले दोनों पर,

वैभव से विह्वल महलों को
काँटों की कटु झोपड़ियों पर,
मधु से मतवाली बेलायें
भूखी बिलखाती घड़ियों पर,

रानी कुमार-सी निधियों को
मा की आँसू की लड़ियों पर,
तुमने अपने को लुटा दिया
आज़ादी की फुलझड़ियों पर !

निर्वासन के निष्ठुर प्रण में
धुँधुवाती रक्त-चिता रण में,
बाणों के भीषण वर्षण में
फौहारे-से बहते व्रण में,

बेटा की भूखी आहों में
बेटी की प्यासी दाहों में,
तुमने आज़ादी को देखा
मरने की मीठी चाहों में !

किस अमर शक्ति आराधन में
किस मुक्ति युक्ति के साधन में,
मेरे वैरागी वीर व्यग्र
किस तपबल के उत्पादन में ?

हम कसे कवच, सज अस्त्र-शस्त्र
व्याकुल हैं रण में जाने को,
मेरे सेनापति! कहाँ छिपे?
तुम आओ शंख बजाने को;

जागो! प्रताप, मेवाड़ देश के
लक्ष्यभेद हैं जगा रहे,
जागो! प्रताप, मा-बहनों के
अपमान-छेद हैं जगा रहे;

जागो प्रताप, मदवालों के
मतवाले सेना सजा रहे,
जागो प्रताप, हल्दीघाटी में
बैरी भेरी बजा रहे!

मेरे प्रताप, तुम फूट पड़ो
मेरे आँसू की धारों से,
मेरे प्रताप, तुम गूँज उठो
मेरी संतप्त पुकारों से;

मेरे प्रताप, तुम बिखर पड़ो
मेरे उत्पीडन भारों से,
मेरे प्रताप, तुम निखर पड़ो
मेरे बलि के उपहारों से;



मानव ने दानव धरा रूप, भर रहे रक्त से समर-कूप,
डूबती धरा को लो उबार! आओ फिर से करुणावतार! —पृष्ठ ३७



बुद्धदेव के प्रति

आओ फिर से करुणावतार !

वट-तट पर हृदय अधीर लिये,
है खड़ी सुजाता खीर लिये;
खोले कुटिया के बंद द्वार।
आओ फिर से करुणावतार !

फिर बैठे हैं चिंतित अशोक,
शिर छत्र, किंतु है हृदय-शोक !
रण की जयश्री बन रही हार !
आओ फिर से करुणावतार !

मानव ने दानव धरा रूप,
भर रहे रक्त से समर-कूप,
डूबती धरा को लो उबार !
आओ फिर से करुणावतार !



महर्षि मालवीय

तुम्हें स्नेह की मूर्ति कहूँ
या नवजीवन की स्फूर्ति कहूँ,
या अपने निर्धन भारत की
निधि की अनुपम मूर्ति कहूँ ?

तुम्हें दया-अवतार कहूँ
या दुखियों की पतवार कहूँ,
नई सृष्टि रचनेवाले
या तुम्हें नया करतार कहूँ ?

तुम्हें कहूँ सच्चा अनुरागी
या कि कहूँ सच्चा त्यागी ?
सर्व - विभव - संपन्न कहूँ
या कहूँ तप-निरत वैरागी ?

तुम्हें कहूँ मैं वयोवृद्ध
या बाँका तरुण जवान कहूँ ?
तुम इतने महान, जी होता
मैं तुमको अनजान कहूँ !

कह सकता हूँ तो कहने दो
मैं तुमको श्रद्धेय कहूँ ।
निर्बल का बल कहूँ,
अनाथों का तुमको आश्रेय कहूँ ।

श्रेय कहूँ, या प्रेय कहूँ
या मैं तुमको ध्रुव-ध्येय कहूँ ?
तुम इतने महान, जी होता
मैं तुमको अज्ञेय कहूँ !

वीरों का अभिमान कहूँ,
या शूरों का सम्मान कहूँ ?
मृदु मुरली की तान कहूँ,
या रणभेरी का गान कहूँ ?

शरणागत का त्राण कहूँ
मानव-जीवन-कल्याण कहूँ ?
जी होता, सब कुछ कह तुमको
भक्तों का भगवान कहूँ !

जी होता है मातृ-भूमि का
तुम्हें अचल अनुराग कहूँ,
जी होता है, परम तपस्वी
का मैं तुमको त्याग हूँक;

जी होता है प्राण फूँकने-
वाली तुमको आग कहूँ,
इस अभागिनी भारत-
जननी का तुमको सौभाग्य कहूँ !

विमल विश्वविद्यालय विस्तृत
क्या गाऊँ मैं गौरव-गान ?
ईंट ईंट के उर से पूछो
किसका है कितना बलिदान ?

हैं कालेज अनेकों निर्मित
फिर भी नित नूतन निर्माण ।
कौन गिन सकेगा कितने हैं
मन में छिपे हुए अरमान ?

तुम्हें आजकल नहीं और धुन
केवल आज़ादी की चाह ।
रह-रह कसक कसक उठ्ठा
करती है उर में आह कराह !

गला दिया तुमने तन को
रो-रो आँसू के पानी में,
मातृभूमि की व्यथा हाय
सहते हम भरी जवानी में!

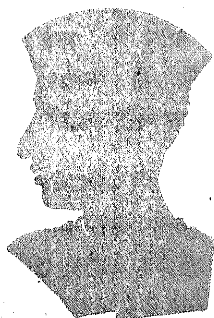
मिले तुम्हारी भक्ति देश को
हम जननी जय-गान करें,
मिले तुम्हारी शक्ति देश को
हम नित नव उत्थान करें;

मिले तुम्हारी आग देश को
आज़ादी आह्वान करें,
मिले तुम्हारा त्याग देश को
तन-मन-धन बलिदान करें।

जियो, देश के दलित अभागों के
ही नाते तुम सौ वर्ष!
जियो, वृद्ध माता के उर में
धैर्य बँधाते तुम सौ वर्ष!

जियो, पिता, पुत्रों को अपना
प्यार लुटाते तुम सौ वर्ष!
जियो, राष्ट्र की स्वतन्त्रता
के आते-आते तुम सौ वर्ष!

('मालवीय-हीरक जयन्ती' के अवसर पर लिखित)



तरुण तपस्वी

शुद्धोदन के सिंहासन के
सुख की ममता त्याग,
किस गौतम के यौवन में
जागा, यह परम विराग?

बोधिवृक्ष है नहीं,
हिमांचल की छाया के नीचे,
कौन तपस्वी तप करता है
करुणा-लोचन मीचे?

बोल उठीं गंगा की लहरें—
यह है वह नरनाहर,
जिसकी जग में विमल ज्योति
जननी का लाल जवाहर!

ग्राम-ग्राम में नगर-नगर में
गृह-गृह में जा-जाकर,
आज़ादी की अलख जगाता
तन में भस्म रमाकर !

यह नेता है कोटि-कोटि
तरुणों के उर का स्वामी,
सारा भारतवर्ष आज है
इसका ही अनुगामी।

ओ भारत के तरुण तपस्वी !
तुम प्रतिपल जन-जन में,
स्वतन्त्रता की ज्वाला बनकर
धधक उठो मन-मन में।



सेगाँव का सन्त

विभु का पावन आदेश लिये
देवों का अनुपम वेश लिये,
यह कौन चला जाता पथ पर
नवयुग का नव संदेश लिये ?

युग-युग का घनतम है भगता,
प्राची में नव प्रकाश जगता;

एशिया खंड की दिव्य भूमि
शोभित है दिव्य प्रवेश लिये,
यह कौन चला जाता पंथ पर
नवयुग का नव संदेश लिये ?

पग-पग में जगमग उजियाली
वन-वन लहराती हरियाली;

करुणावतार, फिर क्या आया
करुणा का दान अशेष लिये ?
यह कौन चला जाता पथ पर
नवयुग का नव संदेश लिये ?

क्या ग्राम-ग्राम, क्या नगर-नगर,
नवजीवन फैला डगर-डगर;

ये कोटि-कोटि चल पड़े किधर ?
नवयौवन का आवेश लिये।
यह कौन चला जाता पथ पर
नवयुग का नव संदेश लिये ?

कर में रण-कंकण हथकड़ियाँ,
पहनीं हमने माणिक-मणियाँ;

वैकुंठ बन गया बन्दीगृह
जो था रौरव के क्लेश लिये।
यह कौन चला जाता पथ पर
नवयुग का नव संदेश लिये ?

किसने स्वतन्त्रता की आगी,
पग-पग मग-मग में सुलगा दी ?

नस-नस में धधक उठी ज्वाला
मर मिटने का उन्मेष लिये,

यह कौन चला जाता पथ पर
नवयुग का नव संदेश लिए ?

साम्राज्यवाद के दुर्ग ढहे,
शासन-सत्ता के गर्व बहे;

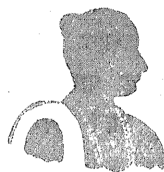
जनसत्ता है जग पड़ी आज
किसका वरदान विशेष लिये ?
यह कौन चला जाता पथ पर
नवयुग का नव संदेश लिये ?

रच आत्माहुति का महायज्ञ
प्रण पूर्ण कर रहा कौन प्रज्ञ ?

फहरा अंबर में सत्यकेतु
दिशि दिशि के छोर प्रदेश लिये;
यह कौन चला जाता पथ पर
नवयुग का नव संदेश लिये ?

वह मलय पवन, वह है आँधी
वह मनमोहन, वह है गांधी;

झुकता हिमाद्रि जिसके पदतल
अपना गौरव निःशेष लिये।
वह आज चला जाता पथ पर
नवयुग का नव संदेश लिये ?



तुलसीदास

जब मुग़ल महीपों के बादल
छाये जीवन नभ में अपार
दासता, पराजय, गृह-विग्रह
से गहराया तम का प्रसार;

तब रामनाम का अमृत ले,
आये गौरव गाते अमंद्र,
मृत हत जनता को मिले प्राण
चमके तुम बन सौभाग्य चंद्र !

हिन्दूकुल का जब महापोत
था इस जग जलनिधि में अधीर
तुम बने अचल आकाशदीप,
दिखलाया प्रतिपल सुगमतीर,

अंधड़ वैभव के बहे घोर
लहरें विलास की उठीं रोर,
तुम सुदृढ़ पाल बन लोकपाल
तब ले आये निज धर्म ओर।

गाते यदुपति के रूपगीत
आये थे प्रेमी सूरदास,
जर्जरित धमनियों में हमने
पाया नवयौवन का विलास;

पर, वह पौरुष, वह बलविक्रम,
जिससे जय मिलती अनायास
दी शक्ति, तुम्हीं ने शक्तिमूर्ति,
तब उठे पुनः हम गिरे दास;

पा रामनाम का विजयमंत्र
हम भूल गये निज देशकाल,
उत्साह जगा, साहस फूटा,
फिर से नत, उन्नत हुए भाल;

हम अड़े अचल हो निज पथ पर
हम खड़े हुए निज पग सँभाल
हम गड़े धर्म-हित पर अपने
हम लड़े कर्म-हित ठोंक ताल।

उपनिषद, वेद, दर्शन, पुराण,
शत सद्ग्रंथों का खींच सार,
प्रतिपल जप के संपुट दे दे
सुलगा तप की ज्वाला अपार,

फिर निज मन के मुक्ताकण दे,
औ' लोकवेद की धातु ढार,
यह राम रसायन रचा विमल
नश्वर तन को अमृतोऽपहार !

हे वाल्मीकि के पुनर्जन्म,
क्या नगर नगर, क्या ग्राम ग्राम,
बज रही भक्ति की मधुर बीन
क्या भवन भवन, क्या धाम धाम,

आबाल, वृद्ध, नारी नर में
क्या प्रात प्रात, क्या शाम शाम,
तुलसी तुम गूँज रहे रह रह
गृह गृह में बनकर रामनाम !

क्या राजभवन, क्या रंकद्वार,
सब ओर समादृत तुम समान,
क्या ज्ञानीगृह, विज्ञानीगृह,
युगवाणी के तुम बने गान;

क्या यती, व्रती, क्या गृही, रती,
करते सबको गतिमति प्रदान,
नंदित स्वदेश, वंदित विदेश,
हे तुलसी तुम युग-युग महान !

किस कुल में कब उत्पन्न हुए
किस देश भूमि को किया कांत,
कब कहाँ रहे, किस भाँति रहे,
किससे पाये क्या वर नितांत,

हम खोज खोज कर गये हार,
हम जान जान कर हुए भ्रांत,
तुम एक समस्या, एक प्रश्न,
तुम एक कुतूहल, चिर अशांत !

कामी, प्रताड़ना थी कैसी ?
बन गये एक क्षण में अकाम,
निष्काम रहे आजीवन ही
फिर जगा न मन में कभी काम,

फिर, कब तुम राजापुर लौटे
जब चले छोड़कर धराधाम,
सब भूमि बन गई जन्मभूमि
जब रसना में रम गया राम !

वह कौन निशा थी, कौन प्रहर,
जब एकाकीपन बना भार,
तुम डगमग हुए, अडिग न रहे,
चल पड़े अचानक दुर्निवार!

कब कहाँ चले? किस ओर चले?
कितने वन उपवन किये पार?
क्या जान सके, कुछ जान सके,
आँखों में तो थी छवि अपार।

क्या क्या आये मन में विचार?
कैसा था अन्तर्द्वंद्व घोर?
कह सकता, तुमको छोड़ कौन?
तुम चले प्रणय की बँधे डोर?

यह मन का मधु, यह अधरामृत,
लहरेगा बन विष की हिलोर,
आभास तुम्हें मिल सकता, तो
फिर भी जाते क्या उसी ओर?

इस पार, तुम्हारा पुर गृह था,
उस पार, प्रिया का रत्न धाम,
थी बीच बढ़ी गङ्गा अथाह,
श्रावण घन से प्लावित प्रकाम,

तरणी न कहीं था कर्णधार,
तुम कूद पड़े जल में अपार,
उस पार, गये पल में कैसे,
ले गया, कौन तुमको उतार ?

कितनी उत्सुकता, उत्कंठा
से तुम पहुँचे पद तल अधीर
मुखचन्द्र-कान्ति से करने को
शीतल अपना आकुल शरीर;

जिन आँखों में स्वागत वंदन
का खींचा तुमने मधुर चित्र,
जिस मुखमंडल में निमिष प्रहर
देखा तुमने निज सुख पवित्र,

जिन अधरों के अधरामृत से
चाहा था तुमने अमृतपान,
उनमें ही कैसा परिवर्तन !
कैसे निकले विष बुझे बाण !—

'क्यों हुई न तुमको ग्लानि नाथ ?
क्यों आई तुम्हें न लाज नाथ ?
इतने कामाकुल बन अधीर,
आये अंधे बन आज नाथ !

'इस हाड़ मांस के पुतले पर
तुमकों है जितनी परम प्रीति,
इतनी होती यदि रामचरण,
तो होती तुमको फिर न भीति ?'

इस जग जीवन का सार मान,
जिस पर अर्पित नित किये प्राण !
तज लोक लाज, तज लोक भीति
आये जिसके गृह, शरण मान,

उसने ही तनमन प्राणों पर,
जब किया कठिन निर्मम प्रहार,
अनुभूति विभूति मिली उस दिन,
तुम हुए उसी दिन निर्विकार !

उठती होगी तब तो न देह,
चेतन भी होगा जड़ीभूत,
जब लगे लौटने होगे तुम,
यों निपट निराशा से प्रभूत,

दृग तल होगा, घन अंधकार,
पद तल पथ, जिसका हो न छोर,
जड़ वाणी, जड़ मन नयन प्राण,
उठते न चरण होंगे कठोर !

हे तुलसी, दृग में लिये अश्रु
लेकर उर में व्रण दीर्घ घाव,
तुम चले प्रताड़ित किधर कहाँ
कैसे कब मन में जगे भाव ?

निंदित तुलसी, क्रन्दित तुलसी,
तुम चले किधर मेरे निराश,
कर में ले दीपक बुझा हुआ,
विक्षिप्त बने, मुखश्री उदास !

जर्जरित हृदय, जर्जरित देह
जर्जरित लिये ये क्षुब्ध प्राण,
कितने दुख से तुमने प्रेमी,
तब कहीं किया होगा प्रयाण ?

किसके पुर में, किसके उर में,
कब कहाँ कहाँ पर ढूँढ़ त्राण ?
घूमें होगे पागल तुलसी,
अन्तस में दाबे विषमबाण !

प्रेमी के उर की प्रेम प्यास की
लगा सका है कौन थाह ?
प्रणयी के मन की साधों की
पा सका कौन है तट अथाह ?

प्रेमी के गहन निराशा का
पा सका अभी तक छोर कौन !
इन प्रश्नों का उत्तर प्रतिध्वनि,
इनका उत्तर है, अमर मौन !

सद्भक्ति जगी उर में प्रपूर्ण
अनुकरण किया नित आर्य-पंथ,
तब रामनाम के अक्षर से
लिखने बैठे निज आयु-ग्रंथ ।

जीवन के निशिदिन-पृष्ठों
पर,जिनमें अंकित था 'काम'काम,
क्या परिवर्तन, क्या आवर्तन ?
वे गूँज उठे बन 'राम राम' !

नित संतशरण, नित संतचरण,
सद्ग्रंथ पठन, सद्ग्रंथ मनन,
स्वाध्याय बना जीवन का क्रम,
नित कामदमन, नित रामरमण,

तुम चले विचरते तीर्थ-तीर्थ
करने मन का मल पाप हरण,
काशी, प्रयाग, वृन्दावन में,
हैं अमिट तुम्हारे बने चरण !

ये युग युग के थे पूर्ण पुण्य
ये युग युग के थे संस्कार,
ये युग युग के थे जप औ तप
ये युग युग के थे व्रत अपार;

सोये से जाग उठे पल में
सोये फिर कभी न पलक मार,
श्री रामनाम का राग उठा
गमके प्राणों के तार तार!

हे भक्तमाल के कौस्तुभ मणि,
सन्तों की वाणी के विलास,
अधिकृत की कौन न कृति तुमने,
दर्शन पुराण के दृढ़ प्रयास,

है शब्द शब्द में भरा भाव,
है छंद छंद में भरा ज्ञान,
है वाक्य वाक्य में अमर वचन,
वाणी में वीणा का विधान!

काशी का वह आवास कौन
जो बना तुम्हारी सिद्धि पीठ?
संकेत बता सकते तो फिर,
कितने न लगाते वहाँ दीठ,

साधक, वह कौन सिद्धि आसन,
जिससे तुम द्रुत पा गये सिद्धि,
सब सिद्धि समृद्धि झुकी पद तल,
हे सिद्ध,तुम्हारी लख प्रसिद्धि !

गुरु बोल उठे श्री रामनाम
तुम बोल उठे श्री रामनाम,
गंगा की लय में लहरों में
हिल्लोल उठे श्री रामनाम !

जन जन में मन मन में क्षण क्षण,
कल्लोल उठे श्री रामनाम,
जब उठी तुम्हारी अन्तर्ध्वनि
तब डोल उठे वे स्वयं राम !

कितनी, अनन्य थी परम भक्ति,
जब देखा वंशी सजी हाथ,
बोले, लो, धनुषबाण कर में,
तब तुलसी मस्तक झुके नाथ !

रीझे होंगे, खीझे होंगे
इस शिशुहठ पर वे प्रणतपाल !
घनश्याम मुग्ध हो बने राम
तब झुका तुम्हारा भक्त भाल !

मीरा, वह गिरिधर की दासी,
जब पा भव का रौरव अशांत,
श्री चरण शरण को वरण किया,
आई करुणा से स्वराक्रांत,

सङ्कटमोचन, दृढ़व्रती, तुम्हीं ने
दे तब दृढ़ रति का विधान,
दे अभय दान आकुल उर को
जीवन में जीवन दिया दान !

पी गई तुम्हारा, बल पाकर
वह कालकूट को अमृत मान,
वंशीधर, पदतल प्रीति लगी,
तब जन्म मरण दोनों समान !

वैभव विलास के भवन त्याग,
एकाकी, निर्जन, अर्धरात,
यमुनातट पर, वंशी-ध्वनि सुन,
चल पड़ी बावली, पुलकगात;

मीरा, वह भक्तिमूर्ति मीरा,
चल पड़ी जिधर वह तीर्थ बना,
मरुथल में यमुना उमड चली
तरुतल तमाल का कुंज घना,

करतालों की करतलध्वनि में
जब बोल उठी वह कृष्ण कृष्ण,
भूमंडल झूम उठा रस में
जल थल, तरु तृण, जागे सतृष्ण !

'धनधाम, धरा परिवार तजो,
जिससे न रामपद लगे प्रीति',
गूँजते तुम्हारे अमर वाक्य,
प्रतिपल प्राणों में बन प्रतीति;

जब प्रीति जगी सच्ची मन में
तब लोकलाज क्या, लोकभीति ?
प्रिय रति अनन्य, गतिमति अनन्य,
नित धन्य तुम्हारी प्रेम-नीति !

तुलसी, यदि तुम आते न यहाँ
हम ढोया करते धरा धाम,
वैभव विलास में मरे मिटते
सूझता हमें कब सत्य काम ?

निर्गुण निरीह के घनतम में,
भटका करते हम बार-बार,
यदि सगुण रूप की दिव्य ज्योति,
देते न मधुरतम तुम प्रसार !

विस्मरण हमें है वाल्मीकि
भूले गीता, भूले पुराण,
दुर्गम, दुर्बोध, वेद हमको,
वैदिक वाणी से हम अजान,

अपनी गतिमति, अपनी संस्कृति,
अपनी गतिविधि, होती न ज्ञान,
यदि तुम न क्रान्तदर्शी भरते
हिन्दी में हिन्दू-धर्म प्राण;

शैवों वैष्णव में छिड़ा द्वंद्व,
तुम सद्वैष्णव आये उदार !
बिछुड़े हृदयों को मिला दिया
हो गये एक बिखरे अपार,

मिट गई कलह, छा गई शांति,
तुमने दी वह ममता प्रसार,
हिन्दूकुल की बिखरी लड़ियाँ
हो गईं एक पा स्नेह-तार !

संस्कृत का सिंहासन जिसमें
कवि कालिदास औ व्यास भास,
आश्रय पाकर के हुए विश्रुत
वीणा वाणी के बन विलास,

पर, तुम, भव का गौरव बिसार,
हिन्दी जननी के बढ़े द्वार
सम्राज्ञी बना दिया उसको
जो थी भिखारिणी कल अपार;

रच रामचरित का विशद ग्रंथ
तुम ज्योतित, बनकर कोटि दीप,
युग देशकाल पर भुज प्रसार,
मिलते आ प्राणों के समीप;

मेरी जननी के जन-जन में
तुम बसे बने मन के महीप,
तुम-सा जीवन मुक्ता पाने,
बन जाते कितने देश सीप।

युग चक्र प्रवर्त्तन किया अचल,
संगठित किया बिखरा समाज,
श्री रामनाम का शंख फूँक,
जागरण प्रतिष्ठित किया आज,

मंदिर के घंटों से जागी
फिर आर्यों की आत्मा महान,
अभ्युदय हुआ निज गौरव का
विस्मृति संस्कृति में पड़े प्राण।

तुम आर्यों के जन गण नायक,
करके प्रबुद्ध जनमत अबोध
ले चले क्रान्तिपथ पर हमको
नित मुक्ति युक्ति की किया शोध,

जीवन भर ही मन प्राणों से,
नित किया अनार्यों से विरोध,
कर गये अधिष्ठित आर्यधर्म
भर गये राम से आत्मबोध !

जनगण के दुख से हो विगलित
उद्धारहेतु, कर्त्तव्यमूढ़,
तुम चले ढूँढ़ने संजीवन,
जो युग युग तक दे शक्ति गूढ़;

भैरवी रामगुण की गाई,
जागे जिससे बुध और मूढ़
तुम जातिरथी, तुम राष्ट्ररथी,
तव प्रगति देख, गतिमति विमूढ!

गूँजो फिर बनकर रामनाम !
जनगण की वाणी में प्रकाम ।
गूँजो फिर बनकर रामनाम !
बंदी के प्राणों में ललाम !

गूँजो फिर बनकर रामनाम,
रणवीरों के मन में अकाम!
नवराष्ट्र जागरण के युग में
गूँजो तुलसी तुम धाम धाम!

गूँजो बापू के दृढ़ स्वर में
गूँजो गांधी की दृढ़ गति में
गूँजो स्वदेश मतवालों की
वीणा वाणी में दृढ मति में।

गूँजो नंगों भिखमंगों की
विप्लव तानों में धृति रति में,
नव राष्ट्र संगठन के युग में
गूँजो तुम कोटि चरण गति में!

दो हमको भूली कर्मशक्ति
दो हमको फिर से आत्मबोध,
दो हमें राम के मानस का
वह क्षत्रिय का अपमान क्रोध;

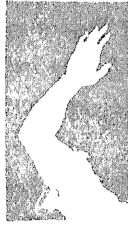
दो लक्ष्मण का वह भ्रातृभाव,
हम बढ़ें, सुदृढ़ हो जातिबोध
ले चलो हमें जययात्रा में
कवि, बनो राष्ट्रकवि, राष्ट्रबोध!

दो नवचेतन, दो नवजीवन,
दो संजीवन, दो देशभक्ति,
दो नित्य सत्य हित लड़ने की
नस नस प्राणों में आत्मशक्ति,

दो महावीर का बल-विक्रम,
लाँघें समुद्र त्यागें अशक्ति
सीता स्वतंत्रता गृह आवे,
हो भस्म स्वर्ण-लंका विरक्ति;

जो राम-राज्य गाया तुमने
छाया है जिसका यश-वितान,
थे राव-रंक सब सुखी जहाँ
थे ज्ञानकर्म से मुखर प्राण,

युग युग की दृढ़श्रृंखला तोड़,
है शुभ स्वराज्य का फिर विहान
इस राष्ट्र-जागरण के युग में
कवि उठो पुनः तुम बन महान !



आज़ादी के फूलों पर

सिंहासन पर नहीं वीर!
बलिवेदी पर मुसकाते चल!
ओ वीरों के नये पेशवा!
जीवन-जोति जगाते चल!

रक्तपात, विप्लव अशान्ति
औ' कायरता बरकाते चल।
जननी की लोहे की कड़ियाँ
रह रहकर सरकाते चल!

कल लखनऊ गूँज उट्ठा था,
आज हरिपुरा हहर उठे,
बने अमिट इतिहास देश का
महाक्रान्ति की लहर उठे!

फूलों की मालाओं को
पद की ठोकर से दलते चल,
शूलों की मख़मली सेज को
सुहला सुहला मलते चल।

जननी के बंधन निहार
अपमान ज्वाल में जलते चल,
ठुकराये वीरों के उर के
रोषित रक्त उबलते चल!

पग-पग में हो सिंहगर्जना
दिशि डोलें, झंकार उठे,
जागें, सोयें इस युगवाले
यों तेरी हुंकार उठे!

है तेरा पांचाल प्रबल
बंगाल विमल विक्रमवाला,
महाराष्ट्र सौराष्ट्र हिन्द
अपने प्रण पर मिटनेवाला;

है बिहार गुणगौरववाला
उत्कल शक्तिसंघवाला
बलिवाला गुजरात, सुदृढ़
मद्रास, भक्ति वैभववाला;

फिर क्यों दुर्बल भुजा हमारी
कैसी कसीं लोह-लड़ियाँ ?
अँगड़ाई भर ले स्वदेश
टूटें पल में कड़ियाँ—कड़ियाँ।

आयें हम नंगे भिखमंगे
सब भूखों मरनेवाले।
अपनी हड्डी-पसली खोले,
रक्तदान भरने वाले

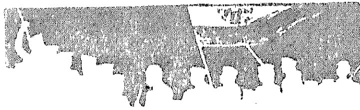
खुरपी और कुदालीवाले।
फड़ुआ औ' फरसेवाले।
महाकाल से रातदिवस
दो टुकड़ों पर लड़नेवाले!

आयें, काल-गाल के छोड़े
वज्रदेह, दृढ़ व्रतधारी।
एक बार फिर बढ़ें युद्ध में
फिर हो रण की तैयारी।

फूँक शंख बाजे रणभेरी
जननी की जय जय बोले।
चले करोड़ों की सेना
डगमग डगमग धरणी डोले!

जिधर चलेगा उधर चलेगी
अक्षौहिणी सैन्य मेरी ।
कौन रोक सकता वीरों को
सृष्टि बनी जिनकी चेरी ?

बढ़ जायें चालिस करोड़ फिर
बलि के मधुमय भूलों पर,
मेरी मा भी चले विहँसती
आज़ादी के फूलों पर ।



दाँड़ी-यात्रा

पूछता सिंधु था लहरों से
क्यों ज्वार अचानक तुम लाईं !
लहरें बोलीं,—'क्या मनमोहन की
वेणु न तुमने सुन पाई !'

रण-यात्रा में है चला आज
बृन्दावन का वंशीवाला ।
बोला तब लवण-सिंधु पूजूँ,
'लावण्यमयी, जा कुछ ले आ !'

लहरें बोलीं, तट पर आकर
देखो, वह टोली है आई ।
उद्ग्रीव सिंधु हो उठा मुखर
कैसी बाँकी झाँकी छाई !

सबसे आगे फहराता था
जय-ध्वजा, तिरंगा ध्वज प्यारा।
पीछे बजती थी बीन मधुर
वंशी सितार का स्वर न्यारा!

पूछा तरुओं ने आस-पास
यह है किस आसव की मात्रा?
तब काली कोयल कुहुक उठी
यह बापू की दाँडी-यात्रा!

किस तरह चले, ये कौन चले
कब कहाँ चले, बोलो रानी!
सागर ने पूछा लहरों से
कुछ तो बतलाओ कल्याणी!

लहरों ने मर्मर स्वर भर कर
बन ऊर्मि कथा मधु-भरी कही।
ओ, पारावार अपार, सुनो
इस यात्रा की कुछ बात सही!

जब ब्रिटिश राज्य के दूतों ने
कुछ भी न न्याय का मत माना,
अन्याय भंग करने को तब
बापू ने यह रण-प्रण ठाना।

आश्रम में गूँज उठा सँदेश
कल प्रात समर-यात्रा होगी,
जिसको चलना हो चले साथ
जो हो अपने घर का योगी।

हल-चल-सी फैल गई पल में
जागी फिर साबरमती रात,
वीरों का सजने लगा संघ
होगा पावन प्रस्थान प्रात।

कब सोया कौन कहाँ निशि में
सबने उमंग के साज सजे,
नंगे फ़क़ीर के कुछ चेले
मतवालों ने पर्यंक तजे।

पति से यों पत्नी ने पूछा
हे नाथ, साथ ले चलो मुझे।
पगली! तेरा कुछ काम नहीं,
घर रहना ही कर्त्तव्य तुझे!

तुम जाओगे क्या एकाकी,
मैं रह न सकूँगी एकाकी,
बोली यों पति से फिर पत्नी
अपनी कटाक्ष को कर बाँकी।

पति चले, चली पत्नी पुलकित
मन में उत्साह अतुल उमंग,
स्वाहा कर सुख-वैभव विलास
ले ब्रह्मचर्य का व्रत अभंग !

भाई बहनों के पास गये
बोले, बहनो ! दो बिदा आज,
अपने मंगल जल अक्षत से
दो मेरे प्रण का कवच साज।

बहनें बोलीं, भैया न बनेगा
यह एकाकी मौन गमन,
हम भी पीछे-पीछे पद पर
अनुगमन करेंगी मंदचरण।

भाई-बहनें चल पड़ीं संग
था रङ्ग उमङ्गों में गहरा,
उत्सुकता ने सोने न दिया
जाग्रति ने दिया मधुर पहरा।

जननी के श्रीचरणों में पड़
बोले बेटा, दो बिदा आज,
माता के आँचल में सनेह
का सागर उमड़ा दूध-व्याज।

जननी के उर का गर्व जगा
मा के उर का अभिमान जगा,
तू धन्य पुत्र ! जो जननी के
हित बढ़ा युद्ध में प्रेमपगा।

मा ने बेटे के मस्तक पर
रोचना किया अक्षत छोड़े,
आशीर्वाद वरदान प्राप्त कर
चले वीर साहस जोड़े।

चल पड़ी बहन, चल पड़े बंधु
चल पड़ीं जननि चल पड़े पुत्र
पति चले चली पत्नी उनकी
जुड़ गया स्नेह का सरस सूत्र,

कुछ चले किशोर-किशोरी भी
बापू के प्यार-भरे छौने,
कर्त्तव्य - गोद में खेल रहे
वात्सल्य-भाव के मृग - छौने !

क्या कहूँ वेश उनका सुन्दर,
मस्तक पर थी अक्षत-रोली,
अधरों पर थी मुस्कान मन्द
आँखों में रण-प्रण की होली।

खादी की साड़ी बहन सजीं
खादी के कुर्ते बन्धु सजे,
चप्पल चरणों में समर साज
रण-दुंदुभि बन जो सतत बजे।

खादी के ताज सजे सिर पर
केसरिया पागों से बढ़कर,
ज्यों चाँद सैकड़ों उग आये
अवनी पर, भू के अंबर पर!

बच्चों, बूढ़ों, मा-बेटों की
बहनों-भाई की यह टोली,
झूमती चली मतवाली बन
उर पर खाने गोला-गोली!

बापू ले अपनी चिर-संगिनि
जो है उनकी लघु-सी लकुटी,
चल पड़े सुदृढ़पग, सुदृढ़बाहु
दृढ़ कर अपनी सीधी भृकुटी।

नतमस्तक, उन्नत गर्व लिये
नतनयन, स्नेह के भार झुके।
कटि कसे कछौटी खादी की
आजानबाहु, जो नहीं रुके।

उस दिन भारत के कोटि-कोटि
देवता सुमन अँजलि भर भर,
बरसाने आये यान चढ़े
देखा न किसी ने उनको पर।

रुक गये जहाँ, झुक गये वहीं
कितने ही पुर औ, ग्राम-नगर,
पुर-वधुओं से वधुएँ बोलीं,
आये हैं बापू नयनागर!

ले दूध-दही, ले पुष्प-पत्र
ले फल अहार, वृद्धा आई,
बापू के चरणों में संपति
की राशि झुकी, बलि हो आई।

बन गया समर का क्षेत्र वही
जिस स्थल बापू के चरण रुके,
जुड़ गई सभा नर-नारी की
लग गई भीड़, तरु-पात रुके।

कँप उठीं दिशायें नीरव हो
छा गया एक स्वर निर्विकार,
भारत स्वतंत्र करने का प्रण
है यही, यही, रण-मोक्ष-द्वार।

या तो होगा भारत स्वतंत्र
कुछ दिवस रात के प्रहरों पर,
या, शव बन लहरेगा शरीर
मेरा समुद्र की लहरों पर!

वह अचल प्रतिज्ञा गूँज उठी
तरुओं में पातों पातों में,
वह अटल प्रतिज्ञा समा गई
जनगण की बातों बातों में।

बरसाने की आगई याद
धरसाने की उस यात्रा में।
हो गया ध्वंस साम्राज्य-बंध
जब लवण बना लघु मात्रा में।

नवयुग का नव आरंभ हुआ
कुछ नये निमक के टुकड़ों पर।
आज़ादी का इतिहास लिखा
दाँड़ी के कंकड़-पथरों पर।



अनुनय

प्रेम के पागल पुजारी !
प्रेम के पागल भिखारी !

जल रही है आग घर में
जल रहा है घर तुम्हारा,
छेड़ते ही जा रहे तुम
प्रेम का निज एकतारा ?

तुम अरे, कितने अनारी !
मातृ-भू क्योंकर बिसारी ?

राष्ट्र का निर्माण हो जब,
विरह की ध्वनि तुम्हें भाई,
उठ सकेंगे किस तरह हम
जब तुम्हीं ने कटि झुकाई ?

आज तुम पर लाज सारी,
प्रेम के पागल पुजारी !

आज है रण का निमंत्रण
धुन तुम्हें तब प्रीति से है,
आज अलकों से उलझते
जब उलझना नीति से है;

बात क्या उलटी विचारी ?
प्रेम के पागल पुजारी ?

विश्व के इतिहास में
उल्लेख क्या होगा तुम्हारा ?
तुम रिझाते रूप थे,
जब पिस रहा था देश सारा !

यह कलंक असह्य भारी !
प्रेम के पागल पुजारी !

देश की आशा तुम्हीं हो,
राष्ट्र के भावी प्रणेता !
फिर विलास-विलीन कैसे ?
इंद्रियों के चिर विजेता !

पार्थकुल के रक्तधारी !
प्रेम के. पागल पुजारी !

रहे रूठी राधिका, मत रुको,
मत उसको मनाओ,
देखती अपलक तुम्हें जो
लाज तुम उसकी बचाओ।

द्रौपदी नङ्गी उघारी,
नयन से जलधार जारी !

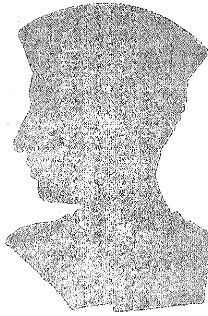
आज वंशी छोड़ दो लो
पांचजन्य किशोर मेरे,
है खड़ी अक्षोहिणी
सम्मान में कुरुक्षेत्र घेरे;

आज फिर रण की तयारी !
प्रेम के पागल पुजारी !

यह जवानी, ये उमंगें,
यह नशा, यह जोश भारी,
देश को दो भीख प्यारे,
जग पड़े क़िस्मत हमारी !

छिन्न हों कड़ियाँ हमारी,
जय मनायें हम तुम्हारी,

फिर सजे वंशी तुम्हारी
फिर बजे वंशी तुम्हारी।
प्रेम के पागल पुजारी
मातृ-भू क्योंकर बिसारी !



तरुण !

उठे राष्ट्र तेरे कंधों पर
बढ़े प्रगति के प्रांगण में,
पृथ्वी को रख दिया उठाकर
तूने नभ के आँगन में;

तेरे प्राणों के ज्वारों पर
लहराते हैं देश सभी,
चाहे जिसे इधर कर दे तू
चाहे जिसे उधर क्षण में!

विजय-वैजयन्ती फहरीं जो
जग के कोने कोने में,
उनमें तेरा नाम लिखा है
जीने में बलि होने में।

घहरे रण घनघोर, बढ़ीं
सेनायें तेरा बल पाकर,
स्वर्ण-मुकुट आगये चरण-तल
तेरे शस्त्र सँजोने में ;

तेरे बाहुदंड में वह बल
जो केहरि-कटि तोड़ सके,
तेरे दृढ़ स्कंध में वह बल
जो गिरि से ले होड़ सके।

तेरे वक्षःस्थल में वह बल
लोहा ले विष-बाणों से,
तेरे गर्जन में वह बल
शव में भी जीवन जोड़ सके।

यह अवसर है, स्वर्ण-सुयुग है,
खो न इसे नादानी में,
रँगरलियों में, छेड़छाड़ में,
मस्ती में, मनमानी में।

लिख अपना इतिहास अमिट
उड़ते निशिदिन के पृष्ठों में,
ज्वाल! लपट झुलसा दे नभ को
आग लगा दे पानी में!

उठ बनकर भूकम्प भयानक
डगडग डगमग जग डोले,
उल्कापात वह्नि बरसा रे
गलें मेरु ढलकें शोले।

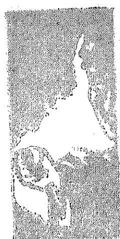
महाकाल की प्रलय-रात्रि में
तांडव कर रे एकाकी,
तेरी शक्ति, भक्ति भर दे
नत जग, तेरी जय-जय बोले!

तरुण! विश्व की बागडोर ले
तू अपने कठोर कर में,
स्थापित कर रे मानवता
बर्बर नृशंस जग के उर में।

दंभी को कर ध्वस्त धरा पर
अस्त्र-त्रस्त पाखंडों को,
करुणा शांति स्नेह सुख भर दे
बाहर में, अपने घर में।

युग युग की रूढ़ियाँ, अंधविश्वास
प्राण को घोंट रहे,
अब न रहा रे बल शरीर में
जो फिर ये घन-चोट सहे।

यौवन की ज्वालावाले !
दे अभयदान पददलितों को,
तेरे चरण शरण में आहत
जग आश्वासन-श्वास गहे !

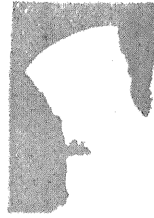


मधुर तक़ाज़ा

प्राणों पर इतनी ममता
औ' स्वतंत्रता का सौदा ?
बिना तेल के दीप जलाने
का है कठिन मसौदा !

आँसू बिखराते बीतेंगी
जलती जीवन-घड़ियाँ ।
बिना चढ़ाये शीश, नहीं
टूटेंगी मा की कड़ियाँ !

दुनिया में जीने का सबसे
सुंदर मधुर तक़ाज़ा ।
ऐ शहीद ! उठने दे
अपना फूलों भरा जनाज़ा ।

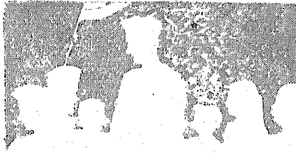


नव झाँकी

घास पात के टुकड़ों पर
लुटती है माखन मिसरी,
गंजी और जाँघिया पा
पीताम्बर की सुधि बिसरी।

चक्की की घरघर में भूला
लेकर चक्र चलाना,
बेतों की बेदर्द मार में
सुना वेणु का गाना।

ज़ंजीरों ने चुरा लिया
वनमाला की छवि बाँकी,
सिकचों में लख आया हूँ
मनमोहन की नव झाँकी।



हथकड़ियाँ !

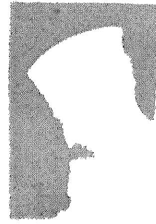
आओ, आओ, हथकड़ियाँ
मेरे मणियों की लड़ियाँ !

मातृभूमि की सेवाओं की
स्वीकृति की जयमाल भली,
कृष्ण-तीर्थ ले चलनेवाली
पावन मंजुल मधुर गली;

जीवन की मधुमय घड़ियाँ
आओ, आओ, हथकड़ियाँ !

कर में बँधो, विजय-कंकण-सी
उर में आत्मशक्ति लाओ,
जन्मभूमि के लिए शलभ-सा
मर जाना, हाँ, सिखलाओ;

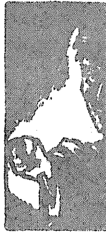
स्वतन्त्रता की फुलझड़ियाँ !
आओ, आओ, हथकड़ियाँ !



मुक्का

ज़ंजीरों से चले बाँधने
आज़ादी की चाह।
घी से आग बुझाने की
सोची है सीधी राह!

हाथ-पाँव जकड़ो, जो चाहो
है अधिकार तुम्हारा।
ज़ंजीरों से क़ैद नहीं
हो सकता हृदय हमारा!



विषमता

तुम ज़ंजीरों से आलिंगन
करनेवाले संन्यासी,
मैं कुसुम-हार से प्यार
बढ़ानेवाला विभव विलासी;

मैं रागी, तुम वैरागी,
तुममें मुझमें समता ही क्या !
मैं पानी हूँ तुम आगी !

आज़ाद देश के रहनेवाले
तुम हो दिव्य निवासी,
मैं पतित पददलित दास देश
का हूँ दुर्बल अधिवासी;



मैं लतिका हूँ, तुम पाला,
तुममें मुझमें समता ही क्या,
मैं तम हूँ तुम उजियाला !

तुम समर शूर रण में
बढनेवाले हो वीर अरिंदम।
मैं प्राण मोह से विकल,
त्राणयाचक हूँ, भीरु नराधम।

मैं माया हूँ, तुम ज्ञान,
तुममें मुझमें समता ही क्या ?
मैं हिंसक, तुम बलिदान !



स्वागत-सुमन

मा ने किया पुकार, बढ़ा तू
चढ़ा हुआ क़ुरबान !
हमने देखा तुझे टहलते
सिकचों के दरम्यान !

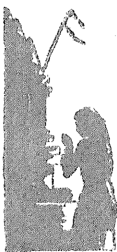
हाथों में थी मूँज, कभी
बैठा चक्की पर गाते,
आज़ादी की लतिका पर
नित अपना ख़ून चढ़ाते !

बहुत दिनों के बिछुड़े प्यारे
अन्तरतम से सट जा।
आज रिहाई हुई
दौड़ आ, मोहन, गले लिपट जा !

तू तो प्यारे निरपराध है
मैं अपराधी भारी।
यह पापी कैसे हो सकता
सेवा का अधिकारी ?

मैं तो वैभव का प्यासा
स्वार्थी, सुखसेज-विलासी,
तू कारागृह में धूनी
तपनेवाला संन्यासी।

फिर भी, बढ़ा स्नेह का आँचल
आ, मेरे बनवारी!
प्यारे, तेरी चरणधूलि का
मैं हूँ एक भिखारी!



प्रार्थना

(हरिजनों का गीत)

खोलो मंदिर-द्वार पुजारी !

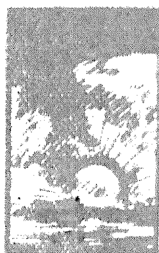
मत ठुकराओ, चरणधूलि
लूँ, बार-बार जाऊँ बलिहारी !

क्यों तुमने शबरी निषाद की
अपने मन से बात बिसारी ?
मैं भी एक उन्हीं के कुल का
प्रभु-पद-पूजन का अधिकारी।

खोलो मंदिर-द्वार पुजारी !

सच मानो, तुमको न कभी मैं
भूलूँगा, मेरे उपकारी।
प्रभु की सुधि के साथ-साथ
आयेगी प्रतिदिन याद तुम्हारी।

खोलो मंदिर-द्वार पुजारी !



नववर्ष

स्वागत ! जीवन के नवल वर्ष
आओ, नूतन-निर्माण लिये,
इस महा जागरण के युग में
जाग्रत जीवन अभिमान लिये;

दीनों दुखियों का त्राण लिये
मानवता का कल्याण लिये,
स्वागत ! नवयुग के नवल वर्ष !
तुम आओ स्वर्ण-बिहान लिये !

संसार क्षितिज पर महाक्रान्ति
की ज्वालाओं के गान लिये,
मेरे भारत के लिए नई
प्रेरणा नया उत्थान लिये;

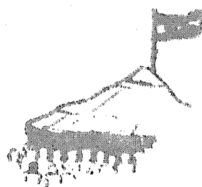
मुर्दा शरीर में नये प्राण
प्राणों में नव अरमान लिये,
स्वागत! स्वागत! मेरे आगत!
तुम आओ स्वर्ण-बिहान लिये!

युग-युग तक नित पिसते आये
कृषकों को जीवन-दान लिये,
कंकाल-मात्र रह गये शेष
मज़दूरों का नव त्राण लिये;

श्रमिकों का नवसंगठन लिये,
पददलितों का उत्थान लिये;
स्वागत! स्वागत! मेरे आगत
आओ! तुम स्वर्ण-बिहान लिये!

सत्ताधारी साम्राज्यवाद के
मद का चिर-अवसान लिये,
दुर्बल को अभयदान,
भूखे को रोटी का सामान लिये;

जीवन में नूतन क्रान्ति
क्रान्ति में नये नये बलिदान लिये,
स्वागत! जीवन के नवल वर्ष
आओ, तुमस्वर्ण-बिहान लिये!



त्रिपुरी-कांग्रेस

था प्रात निकलने को जुलूस
जुड़ रात-रात भर नर-नारी,
उत्सुक बैठे पथ पर आकर
कब रथ निकले सज-धजधारी।

चल ग्राम-ग्राम से नगर-नगर
वृद्ध बाल आये अगणित,
करने को लोचन सफल आज
भर-देश-प्रेम से पावन चित।

पिसन्हरिया की मढ़िया सुंदर
है जहाँ बनी गिरि के ऊपर,
कलचुरी-राज्य के गौरव का
ज्यों यशःस्तंभ हो उठा प्रखर;

बस, उसी स्थान से उठना था
त्रिपुरी का यह जुलूस भारी,
सारे भारत में हलचल थी
सुन-सुनकर जिसकी तैयारी !

बावन वर्षों की याद लिये
आये बावन हाथी मतंग,
इतिहास-पटल पर लिखने को
मतवालों के मन की उमंग।

सन् उन्तालिस की ग्यारह को
जब रात बदलकर बनी उषा,
जनगण में कोलाहल छाया
मन-प्राणों में छा गया नशा।

हो गये खड़े पथ पर सजकर
रथ लेकर, गज दिग्गज काले,
खींचने राष्ट्ररथ को आये
जयपथ पर ज्यों रण-मतवाले !

उस कुरुक्षेत्र की याद आगई
सहसा इस कवि के मन में,
जब पाँच गाँव के लिए मचा
था यहाँ महाभारत रण में।

यों ही तब दिग्गज शूरवीर
प्रातः होते ही रणपथ पर,
बढ़ते होंगे ले ध्वजा शिखर
योधा बैठे होंगे रथ पर।

छाई पूरब की लाली में
ज्यों ही दिनकर की उजियाली,
बज उठे शंख,दुंदुभि, मृदंग
मारू बाजे वैभवशाली।

बावन हाथी जुड़ गये
एक से एक लगे पीछे आगे,
बावन सारथी सवार हुए
जो मातृभूमि-पद-अनुरागे।

सिर पर विशुभ्र गांधी-टोपी
तन पर खादी के शुभ्र वस्त्र,
ये युद्ध चले करने योधा
जिनके न हाथ में एक शस्त्र।

घन घन घन घन घंटा बोले
झन झन झनझन बाजी रणभेरी
चल पड़ा हमारा यह जुलूस
पल में फिर लगी न कुछ देरी।

रथ था विशुभ्र ज्यों सत्य स्वयं
हो मूर्तिमान वाहन बनकर,
आया हो ले चलने हमको
पावन स्वराज्य के जय-पथ पर।

था तरल तिरङ्गा लहर रहा
रथ के मस्तक को किये तुंग,
अभिनंदन में दिखलाते थे
झुकते-से सब सतपुड़ा-शृङ्ग,

सतपुड़ा-शृङ्ग, जिनमें बैठे थे
उत्सुक अगणित नर-नारी,
चित्रित कर दी विधि ने जैसे
उनमें विचित्र जनता सारी।

जब चला हमारा यह जुलूस
तब कोटि कोटि उत्सुक दर्शक,
भर भर हाथों में नव प्रसून
बरसाने लगे, नयन अपलक!

पलकें अपलक, वाणी अवाक्
अन्तस गद्गद, तन पुलक भरे,
जागरण देख यह भारत का
दृग में सुख के नव अश्रु ढरे!

वह धन्य देश ! जिसमें उठते
पददलित याद कर निज गौरव,
बलिवेदी पर बढ़ते शहीद
लाने को फिर स्वदेश वैभव ।

नर्मदा इधर दक्षिण तट पर
गाती थी स्वागत-गीत गान ।
सतपुड़ा उधर था हर्षफुल्ल
शिर विनत किये पथ में अजान !

सौभाग्य महाकोशल का था
जो गौरव-मंडित झुका भाल,
श्री कर्णदेव का गौरव ले
अभिनंदन करता था विशाल !

जागो फिर, मेरे कर्णदेव
देखो आया है स्वर्ण-काल,
फिर, चला महाकोशल लिखने
भारत-जननी का भाग्य भाल ।

बढ़ रहा गोंडवाना फिर से
नापने देश की परिधि छोर ।
जनगण जागे पददलित पुनः
जनरण का उठता महा रोर !

जागो फिर, सोये कर्णदेव
कर लो हर्षित अपने लोचन,
त्रिपुरी से सजकर चली आज
फिर, गजसेना, घंटा-ध्वनि घन !

जागो फिर, मेरे कर्णदेव
जग रहा तुम्हारा पुण्यपूर्व,
तुम चले आज निर्मित करने
सुखमय स्वराष्ट्र अभिनव अपूर्व !

बावनसर बावन दर्पण बन
थे चित्र खींचते मौन जहाँ,
बावन वर्षों का वैभव ले
कांग्रेस झूमती चली वहाँ;

झूमी प्रतिपल गजगति बनकर
झूमी प्रतिक्षण गज-रथ चढ़कर।
झूमी पग पग में मग-मग में
जगमग मनकर, रण में बढ़कर।

पांचाल चला अभिमान लिये,
बंगाल चला बलिदान लिये,
मद्रास बढ़ा उत्थान लिये,
सी०पी० स्वागत के गान लिये।

गुजरात गर्व लेकर आया
बनकर पटेल की लौहमूर्ति,
राजेन्द्र किरीट सँवार चला
उत्कल बिहार बन प्राणस्फूर्ति;

ईसा की नव प्रतिमूर्ति लिये
आया सुंदर सीमांत प्रांत,
ले वीर जवाहर को पहुँचा
जननी का उर—यह हिंद प्रांत।

राजा जी की ले सौम्यमूर्ति
मद्रास चला नवगर्व लिये,
सौभाग्य चंद्र बंगाल लिये
जिसने नित अरिमद खर्व किये;

कितने ही यों ही देश-रत्न
जिनके न रूप औ' ज्ञात नाम,
जन-सागर के तल में विलीन
भरते थे बल विक्रम प्रकाम।

बाजे बजते थे घमासान,
थे फड़क रहे सब अंग-अंग,
नस-नस में वीर भाव जागा
बह चली रक्त में नव उमंग;

जब बावन दिग्गज चले संग
अपने भारी डग पर धर डग,
तरणी रेवा में डोल उठी,
धरणी हो उठी विचल डगमग !

जयघोषों की तुमुल ध्वनि में
यह बढ़ा महोत्सव आगे फिर,
पहुँचा, था जहाँ लहर लेता
भारत का ध्वजा व्योम को तिर;

त्रिपुरी क्या बसी, अनूपम छवि
जैसे हो त्रिपुरी राज्य उठा,
धरणी के स्तर को चीर
पुरातन कोशल का साम्राज्य उठा;

उठ आये उसके सिंह-द्वार
उठ आईं गुंबद मीनारें,
मेहराब उठे, शुचि शृङ्ग उठे
ध्वज, तोरण, कलसी, मीनारें।

झंडा-मंडप में आ करके
यह समा गया अगणित सागर,
झुक गये शीश रणवीरों के
था विजय-केतु उड़ता नभ पर।

था सजा मातृ-मंदिर पावन
सतपुड़ा शिखर के कोने में,
भारत-जन-सागर सिमट गया
नर्मदा नदी के दोने में;

विंध्याचल, पुण्य पुरातन गिरि
उठता ऊपर ले अतुल गर्व,
वह आज हिमाचल से उज्ज्वल
जिसके गृह में जागरण-पर्व।

गौरीशङ्कर के शुभ्र शृङ्ग
मटमैले गिरि पर बलि जाते,
जिसने आमंत्रित किया
देश के वीर बाँकुरे मदमाते;

विंध्याचल, मा की कटिकिंकिणि,
बज उठा आज हर्षित अपार,
जिनके पथ हेरा उत्कंठित
वे आये हैं देवता-द्वार;

भारत के कोटि कोटि देवी-
देवता अतिथि हैं विंध्या में,
पर्वत-पर्वत पर गिरि-गिरि पर
दीवाली सजती संध्या में।

विंध्याचल, जिसके पंख कटे
है आज न उड़ सकता ऊपर,
अन्यथा, बना पुष्पक विमान
यह मड़राता फिरता भू-पर !

क्या बतलाऊँ क्या था जुलूस ?
यह है वह, युग-युग का सपना।
भारत में जब होगा स्वराज्य
भारत यह जब होगा अपना;

टूटेंगी अपनी हथकड़ियाँ
ढह जायेगा यह राजतंत्र,
होगी भारत-जननी स्वतंत्र
होंगे भारत-वासी स्वतंत्र।



आज रुद्ध है मेरी वाणी !

वह मानव-कंकाल खड़ा है
फटे चीथड़े देह लपेटे,
दुर्गंधित, जर्जर टुकड़े से
मानवपन की लाज समेटे;

तन क्या है? कंकाल-मात्र!
यह शव, जो जा मरघटपर लेटे,
किन्तु, खड़ा विप्लव धधकाने
अचल, मृत्यु को भुज भर भेंटे;

निखिल सृष्टि को भस्म करेगी
इन त्रसितों की मौन कहानी,
तुम कहते हो गीत सुनाऊँ
आज रुद्ध है मेरी वाणी!

वह किसान, सामने खड़ा है
जो युग-युग से पिसता आया,
भाग्य शिला पर, विजित प्रताड़ित
अपना मस्तक घिसता आया;

अपनी आँतों पर अकाल ले
स्वयं बुभुक्षित, विश्व जिलाया,
अंतिम श्वासें आज गिन रहा
किसने डस ली कंचन-काया ?

सर्वनाश लाया अपने घर
महामूढ़ मानव अभिमानी !
तुम कहते हो गीत सुनाऊँ,
आज रुद्ध है मेरी वाणी !

हाहाकार मचा पग-पग में
धधकी महा उदर की ज्वाला,
नंगों भिखमंगों की टोली
जपती दो टुकड़ों की माला;

अरमानों की नीव कँप उठी,
जब से यह जग देखा-भाला,
गुलशन उजड़ा, महफ़िल उजड़ी,
साक़ी मिटा; मिट गई हाला,

देख खड़ा कंगाल सामने
मन की सब साधें मुरझानी !
तुम कहते हो गीत सुनाऊँ
आज रुद्ध है मेरी वाणी !

कारा के काले रौरव का
तिमिर नहीं अब तक भग पाया,
लोहे की ज़ंजीरों के
घावों में अबतक रक्त न आया;

शुष्क हड्डियों में जीवन की
अभी न मांसल गति बन पाई,
खड़े पुनः तुम भार लादने
आये लेने कठिन कमाई !

क़ुर्बानी पर क़ुर्बानी से
चढ़ता कुंठित असि पर पानी !
तुम कहते हो गीत सुनाऊँ
आज रुद्ध है मेरी वाणी !

धधकी महाशक्ति है मेरी
इस गति विधि पर आग लगा दूँ,
लाक्षागृह का राज़ बता दूँ
सोया जनगण शेष जगा दूँ;

कूटिचक्र, षड्यंत्र, दम्भ के
साम्राज्यों के दुर्ग ढहा दूँ;
एक बार, इस पृथ्वीतल को
अभिशापों से मुक्त बना दूँ;

इस समाज, इस जाति, देश की
है करुणा से भरी कहानी !
तुम कहते हो गीत सुनाऊँ,
आज रुद्ध है मेरी वाणी !

चिनगारियाँ निकल पड़ती हैं
मेरी वीणा के तारों से,
झुलस उँगलियाँ, रहीं ज्वाल में
लौ उठती है झंकारों से,

आज गीत की टेक टेक पर
गिरती उथल-पुथल की ज्वाला,
भवन कुटी मंदिर-मस्जिद सब
बनने चले राख की माला !

विधवा का सिंदूर जल रहा
प्रलय-वह्नि की अरुण निशानी!
तुम कहते हो गीत सुनाऊँ
आज रुद्ध है मेरी वाणी !



सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी

सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी
जागो मेरे सोनेवाले!

जब सारी दुनिया सोती थी
तब तुमने ही उसे जगाया,
दिव्य ज्ञान के दीप जलाकर
तुमने ही तमदूर भगाया;
तुम्हीं सो रहे, दुनिया जगती
यह कैसा मद है मतवाले?
सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी
जागो मेरे सोनेवाले!

तुमने वेद उपनिषद रचकर
जग-जीवन का मर्म बताया,
ज्ञान शक्ति है, ज्ञान मुक्ति है
तुमने ही तो गान सुनाया;

अक्षर से अनभिज्ञ तुम्हीं हो
पिये किस नशा के ये प्याले ?
सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी
जागो मेरे सोनेवाले !

गंगा यमुना के कूलों पर
सप्त सौध थे खड़े तुम्हारे,
सिंहासन था, स्वर्ण-छत्र था,
कौन ले गया हर वे सारे ?

टूटी झोपड़ियों में अब तो
जीने के पड़ रहे कसाले !
सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी
जागो मेरे सोनेवाले !

भूल गये क्या राम-राज्य वह
जहाँ सभी को सुख था अपना,
वे धन-धान्य-पूर्ण गृह अपने
आज बना भोजन भी सपना;

कहाँ खो गये वे दिन अपने
किसने तोड़े घर के ताले ?
सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी
जागो मेरे सोनेवाले !

भूल गये वृन्दावन मथुरा
भूल गये क्या दिल्ली झाँसी ?
भूल गये उज्जैन अवन्ती
भूले सभी अयोध्या काशी ?

यह विस्मृति की मदिरा तुमने
कब पी ली मेरे मदवाले !
सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी
जागो मेरे सोनेवाले !

भूल गये क्या कुरुक्षेत्र वह
जहाँ कृष्ण की गूँजी गीता,
जहाँ न्याय के लिए अचल हो
पांडु-पुत्र ने रण को जीता;

फिर कैसे तुम भीरु बने हो
तुमने रण-प्रण के व्रण पाले !
सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी
जागो मेरे सोनेवाले !

तुमने तो जापान चीन तक
उपनिवेश अपने फैलाये,
तुमने ही तो सिंधु पार जा
करुणा के संदेश सुनाये;

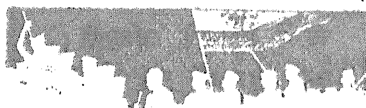
भूल गये कैसे गौतम को
जो थे जगतम के उजियाले।
सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी
जागो मेरे सोनेवाले!

याद करो अपने गौरव को
थे तुम कौन, कौन हो अब तुम।
राजा से बन गये भिखारी,
फिर भी, मन में तुम्हें नहीं ग़म?

पहचानो फिर से अपने को
मेरे भूखों मरनेवाले!
सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी
जागो मेरे सोनेवाले!

जागो हे पांचालनिवासी!
जागो हे गुर्जर मद्रासी!
जागो हिन्दू मुग़ल मरहठे
जागो मेरे भारतवासी!

जननी की ज़ंजीरें बजतीं
जगा रहे कड़ियों के छाले!
सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी
जागो मेरे सोनेवाले!



जय जय जय !

(प्रयाण-गीत)

फूँको शंख, ध्वजायें फहरें
चले कोटि सेना, घन घहरें।
मचे प्रलय !
बढ़ो अभय !
जय जय जय !

जननी के योधा सेनानी,
अमर तुम्हारी है क़ुर्बानी;
हे प्रणमय !
हे व्रणमय !
बढ़ो अभय !

नित पददलित प्रजा के क्रंदन
अब न सहे जाते हैं बंधन !
करुणामय !
बढ़ो अभय !
जय जय जय !

बलि पर बलि ले चलो निरंतर,
हो भारत में आज युगांतर;
हे बलमय !
हे बलिमय !
बढ़ो अभय !

तोपें फटे, फटे भू अंबर,
धरणी धँसे, धँसे धरणीधर,
मृत्युंजय !
बढ़ो अभय !
जय जय जय !

अमर सत्य के आगे थरथर,
काँपे विश्व, काँपे विश्वंभर,
हे दुर्जय !
बढ़ो अभय !
जय जय जय !

बढ़ो प्रभंजन आँधी बनकर,
चढो दुर्ग पर गांधी बनकर;
वीर हृदय !
धीर हृदय !
जय जय जय !

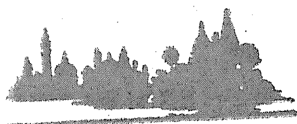
राजतंत्र के इस खँडहर पर,
प्रजातंत्र के उठें नवशिखर;

जनगण जय !
जनमत जय !
बढ़ो अभय !

जगें मातृ-मंदिर के ऊपर,
स्वतन्त्रता के दीपक सुन्दर,
मंगलमय !
बढ़ो अभय !
जय जय जय !

कोटि कोटि नित नत कर माथा,
जन-गण गावें गौरव-गाथा;
तुम अक्षय !
अमर अजय !

जननी के मन—प्राण-हृदय !
जय जय जय !
बढ़ो अभय !



प्रभाती

किस सुख की निद्रा में सोये
तम का अंचल तान,
जागो, वैभव लुटा तुम्हारा
जागो, हुआ बिहान।

हृदय शून्य है, अन्धकार है
लुटी ज्ञान की मणियाँ,
हाथ-पाँव में पड़ी हुई हैं
जटिल रूढ़ि की कड़ियाँ।

ऋषियों की सन्तान!
जागो, हुआ बिहान!

सोने-चाँदी के टुकड़ों पर
बेंच रहे हो बाल।
सरस्वती के लाल,
पतन की ओर तुम्हारी चाल!

विधवाओं के नयन-नीर से
घर का कोना गीला,
जागो, आज तुम्हारे
जीवन के सुख का मुख पीला !

हे भारत-संतान !
जागो, हुआ बिहान !

रेखाओं में धर्म
चारु चन्दन में ही है कर्म,
तुम्हें सत्य के आँगन में
आते आती है शर्म !

जागो, जागो, ए सदियों के
सोये हुए प्रकाश !
एक बार फिर, तिमिर वक्ष पर
हो किरणों का रास !

ऋषियों की सन्तान !
जागो, हुआ बिहान !



प्रयाण-गीत

उठो, बढ़ो आगे, स्वतन्त्रता का
स्वागत - सम्मान करो,
वीर सिपाही बन करके
बलिवेदी पर प्रस्थान करो।

तन पर खादी सजी निराली
मन में देशभक्ति मतवाली,

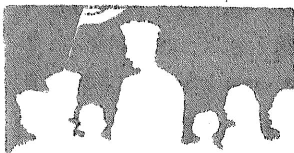
कर में हो स्वराज्य का झंडा
उर में मा का ध्यान करो।
उठो, बढ़ो आगे, स्वतन्त्रता का
स्वागत - सम्मान करो।

लिये सत्य करवाल हाथ में
लिये अहिंसा ढाल साथ में,

बढ़ो, वीर बाँकुरे सभा में,
घोर युद्ध घमसान करो,
उठो,बढ़ो आगे, स्वतन्त्रता का
स्वागत - सम्मान करो।

जब तक एक रक्त कण तन में
पीछे हटो न तिल भर प्रण में,

विजय-मुकुट है हाथ तुम्हारे,
दृढ़ हो जीवन-दान करो;
उठो,बढ़ो आगे, स्वतन्त्रता का
स्वागत - सम्मान करो।



पथ-गीत

हम मातृ-भूमि के सैनिक हैं,
आज़ादी के मतवाले हैं;
बलिवेदी पर हँस-हँस करके,
निज शीश चढ़ानेवाले हैं।

केसरिया बाना पहन लिया,
तब फिर प्राणों का मोह कहाँ ?
जब बने देश के संन्यासी,
नारी-बच्चों का छोह कहाँ ?

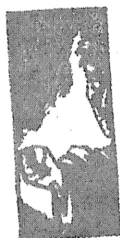
जननी के वीर पुजारी हैं,
सर्वस्व लुटानेवाले हैं;
हम मातृ-भूमि के सैनिक हैं,
आज़ादी के मतवाले हैं।

अब देश-प्रेम की रङ्गत में,
रँग गया हमारा यह जीवन।
उसके ही लिए समर्पित है,
सब कुछ अपना यह तन-मन-धन।

आगे को बढ़ा चरण रण में,
पीछे न हटानेवाले हैं;
हम मातृ-भूमि के सैनिक हैं,
आज़ादी के मतवाले हैं।

सन्तान शूर-वीरों की हैं,
हम दास नहीं कहलायेंगे;
या तो स्वतन्त्र हो जायेंगे,
या रण में मर मिट जायेंगे;

हम अमर शहीदों की टोली में,
नाम लिखानेवाले हैं;
हम मातृ-भूमि के सैनिक हैं,
आज़ादी के मतवाले हैं।



तैयार रहो

मेरे वीरो तैयार रहो,
फिर भेरी बजनेवाली है,
मेरे तीरो तैयार रहो,
फिर टोली सजनेवाली है!

शाबास ! शूरवीरो मेरे,
शाबास ! समरधीरो मेरे!
शाबाश! जननि के चरणों में
लुटनेवाले हीरो मेरे!

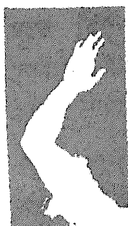
मंज़िल थोड़ी ही शेष रही,
साहस ले उर में चले चलो,
मुसकानों से बलिदानों से,
बाधा-विघ्नों को दले चलो।

यह मधुर संधि-संदेश
सिमटनेवाली पल में छाया है,
इसके अंचल में मत सोना,
यह छलना है, यह माया है।

शूरो वीरों के शोणित का
अभिमान लिये तैयार रहो,
आहत जननी के अंतस के
अरमान लिये तैयार रहो।

तैयार रहो मेरे वीरो,
फिर टोली सजनेवाली है।
तैयार रहो मेरे शूरो,
रणभेरी बजनेवाली है!

इस बार, बढ़ो समरांगण में,
लेकर वह मिटने की ज्वाला,
सागर-तट से आ स्वतन्त्रता,
पहना दे, तुमको जयमाला!



बढ़े चलो ! बढ़े चलो !

(प्रयाण-गीत)

न हाथ एक शस्त्र हो,
न साथ एक अस्त्र हो,
न अन्न, नीर वस्त्र हो,

हटो नहीं,
डटो वहीं,
बढ़े चलो
बढ़े चलो !

रहे समक्ष हिमशिखर
तुम्हारा प्रण उठे निखर,
भले ही जाये तन बिखर,

रुको नहीं,
झुको नहीं,
बढ़े चलो
बढ़े चलो !

घटा घिरी अटूट हो
अधर में कालकूट हो,
वही अमृत का घूँट हो,

जिये चलो
मरे चलो
बढ़े चलो
बढ़े चलो!

गगन उगलता आग हो
छिड़ा मरण का राग हो,
लहू का अपने फाग हो

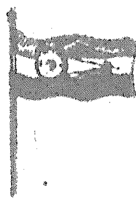
अड़ो वहीं
गड़ो वहीं
बढ़े चलो!
बढ़े चलो!

चलो नई मिसाल हो,
जलो नई मशाल हो,
बढ़ो नया कमाल हो,

रुको नहीं
झुको नहीं
बढ़े चलो
बढ़े चलो!

अशेष रक्त तोल दो,
स्वतन्त्रता का मोल दो,
कड़ी युगों की खोल दो,

डरो नहीं
मरो वहीं
बढ़े चलो!
बढ़े चलो!



जय राष्ट्रीय निशान !

जय राष्ट्रीय निशान !
जय राष्ट्रीय निशान !
जय राष्ट्रीय निशान !!

लहर लहर तू मलय पवन में,
फहर फहर तू नील गगन में,
छहर छहर जग के आँगन में,

सबसे उच्च महान !
सबसे उच्च महान !
जय राष्ट्रीय निशान !!

जब तक एक रक्त कण तन में,
डिगें न तिल भर अपने प्रण में,
हाहाकार मचावें रण में,

जननी की संतान !
जननी की संतान !
जय राष्ट्रीय निशान !!

मस्तक पर शोभित हो रोली,
बढ़े शूरवीरों की टोली,
खेलें आज मरण की होली,

बूढ़े और जवान !
बूढ़े और जवान !
जय राष्ट्रीय निशान !!

मन में दीन-दुखी की ममता,
हममें हो मरने की क्षमता,
मानव मानव में हो समता,

धनी ग़रीब समान
गूँजे नभ में तान
जय राष्ट्रीय निशान !!

तेरा मेरुदंड हो कर में,
स्वतन्त्रता के महासमर में,
वज्र शक्ति बन व्यापे उर में,

दे दें जीवन-प्राण !
दे दें जीवन-प्राण !
जय राष्ट्रीय निशान !!

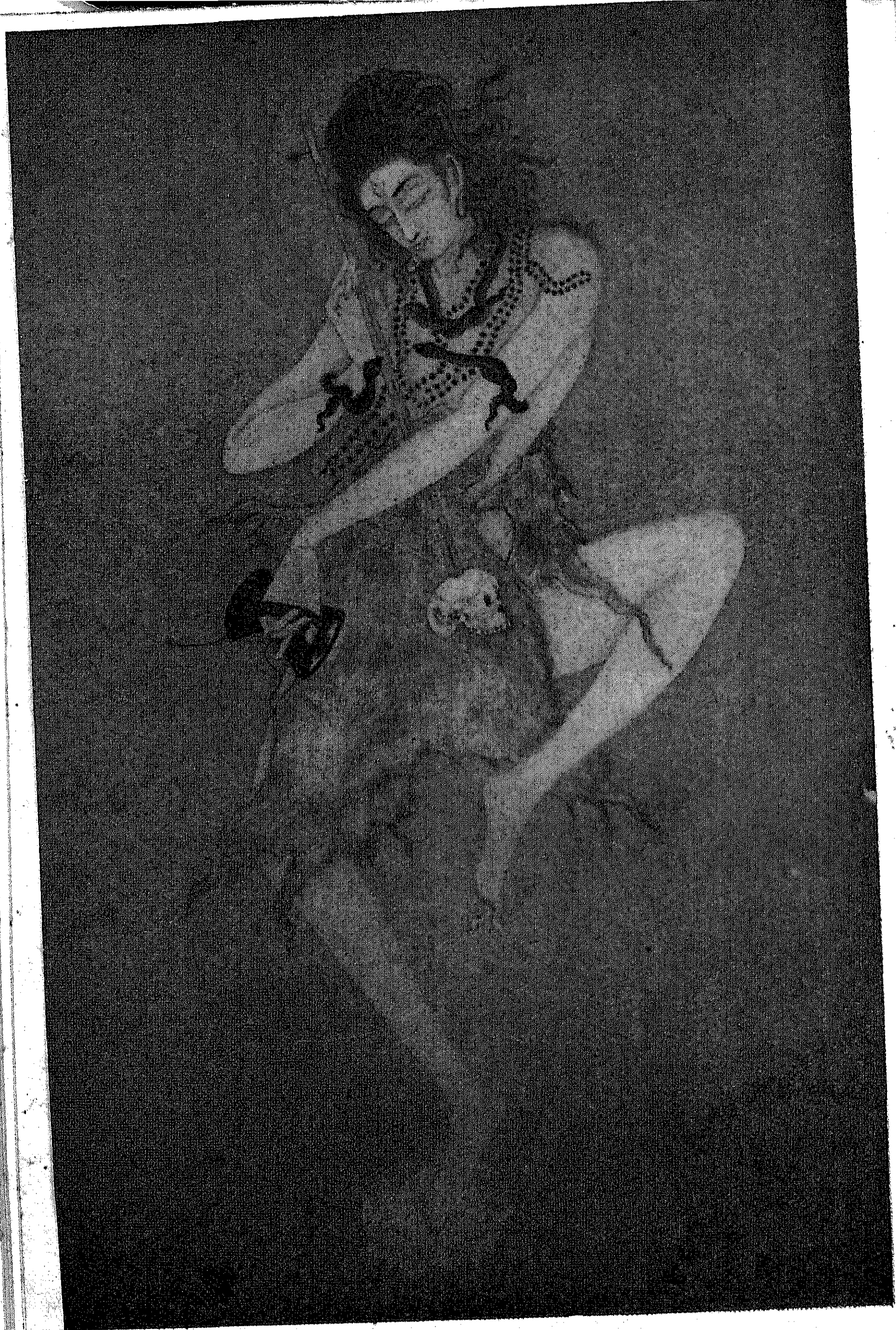


विप्लव-गीत

रवि गिरने दे, शशि गिरने दे
गिरने दे, तारक सारे,
अचल हिमांचल चल होने दे
जलधि खौलकर फुंकारे;

धरा धसकने दे पग-पग में
शैल खिसकने दे जल में
दाहक प्रभुता का मोहक
आवरण मसकने दे पल में।

खंड खंड भूखंड, अंड ब्रह्मांड
पिंड नभ में डोलें,
मेरे मृत्युंजय की टोली
जब मा की जय-जय बोलें!



महाप्रलय होने दे निष्ठुर ! कर विनाश की तैयारी ।

धूम्रकेतु चमके, चमके शनि,
चमके राहु, त्रास पल-पल,
होवें ग्रह बारहों केंद्रित
विकल करें रव दिग्मंडल;

मातायें छोड़ें पुत्रों को
पति को छोड़ें बालायें,
अपनी अपनी पड़े सभी को
प्राणों के लाले छायें;

धुआँधार हो, अंधकार हो
कहीं न कुछ सूझे देखे,
स्वयं विधाता भस्मसात् हो
भूल जाय लिखना लेखे।

सप्तसिंधु बारहों दिवाकर
चौदह भुवन लोक थहरे,
बहें पवन उन्चास
नाश का ऐसा अंतिम क्षण लहरे;

वज्रपात हो, बिजली कड़के
थर-थर काँपे सब जल-थल,
अतल, वितल, पाताल, रसातल
भूतल निखिल सृष्टि-मंडल!

महाप्रलय होने दे निष्ठुर !
कर विनाश की तैयारी।
सर्वनाश हो पराधीनता
यों ही भारत की सारी !



समीक्षा एवं सम्मतियाँ

जन-जागृति की कलाकृति 'भैरवी'

[*श्री हरिभाऊ उपाध्याय*]

'भैरवी' के गायक श्री सोहनलाल द्विवेदी 'त्यागभूमि' के ज़माने के राष्ट्रीय कवि हैं। उनकी

कल हुआ तुम्हारा राजतिलक
बन गये आज ही वैरागी!
उत्फुल्ल मधुमदिर सरसिज में
यह कैसी तरुण अरुण आगी?

से प्रारम्भ होनेवाली राणा प्रताप को उद्बोधित करनेवाली कविता 'त्याग-भूमि' के पाठकों को भूली न होगी। जब 'जीवन-साहित्य' निकला तब यह विचार था कि इसमें कविता व कहानी को स्थान न देंगे। दूसरे पत्रों में इनकी भरमार रहती ही है। फिर 'जीवन-साहित्य' का छोटा कलेवर इनसे बचाया जा सके तो अच्छा ही है। किन्तु पहले अंक के लिए ही द्विवेदी जी की यह 'वन्दना' कविता मिली व साथ ही कविता न छापने के निश्चय पर उलहना भी—

वंदना के इन स्वरों में
एक स्वर मेरा मिला लो!
बन्दिनी मा को न भूलो,
राग में जब मत्त झूलो,

अर्चना के रत्नकण में
एक कण मेरा मिला लो !
जब हृदय का तार बोले
शृङ्खला के बन्द खोले
हों जहाँ बलि शीश अगणित
एक शिर मेरा मिला लो !

कहना नहीं होगा कि कविता छपी ही नहीं, बल्कि उसने भविष्य में 'जीवन-साहित्य' में कवितायें छापने का मार्ग भी खोल दिया। 'वन्दना' मुझे इतनी पसन्द आई कि कई बार जब भक्ति, वन्दना या उपासना की मनस्थिति में होता हूँ तो

'वन्दना के इन स्वरों में
एक स्वर मेरा मिला लो'

गुनगुनाने लगता हूँ।

उदयपुर के राजस्थान हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में स्वयं उनके मुख से 'वासवदत्ता', 'युगावतार गांधी', 'किसान' आदि रचनायें मैंने सुनीं। वस्तुतः 'वासवदत्ता' सांस्कृतिक दृष्टि से उनकी अमर रचना है। 'युगावतार गांधी' में महात्मा जी के वैराट का जैसा प्रभावशाली चित्र थोड़े शब्दों व पदों में प्रस्तुत होता है वैसा मैंने हिन्दी की किसी कविता में नहीं देखा—

चल पड़े जिधर दो डग मग में
चल पड़े कोटि पग उसी ओर
पड़ गई जिधर भी एक दृष्टि
गड़ गये कोटि दृग उसी ओर

* * *

जिसके सिर पर निज धरा हाथ
उसके सिर रक्षक कोटि हाथ
जिस पर निज मस्तक झुका दिया
झुक गये उसी पर कोटि माथ

* * *

युग बढ़ा तुम्हारी हँसी देख
युग हटा तुम्हारी भृकुटि देख
तुम अचल मेखला बन भू की
खींचते काल पर अमिट रेख

* * *

तुम बोल उठे युग बोल उठा
तुम मौन बने, युग मौन बना,
कुछ कर्म तुम्हारे कर संचित
युगकर्म जगा, युगधर्म तना

* * *

हे कोटिचरण, हे कोटिबाहु !
हे कोटिरूप, हे कोटिनाम !
तुम एक मूर्ति, प्रतिमूर्ति कोटि
हे कोटिमूर्ति तुमको प्रणाम !

और अब तो उनकी 'भैरवी' ही हाथ में है। इस मङ्गल व प्रसन्न रागिनी का नाम 'भैरवी' न जाने कैसे पड़ गया ! जिसे 'भैरवी' के कोमल-

प्राण स्वरों का बोध नहीं है उसे यह नाम भयंकर लगे तो आश्चर्य नहीं। 'भैरवी' द्विवेदी जी की कुछ एक अच्छी रचनाओं का संग्रह है, यद्यपि उनकी 'वासवदत्ता', 'कुणाल' आदि और भी अच्छी रचनायें इस संग्रह में नहीं आ पाई हैं।

द्विवेदी जी की रचनाओं में सबसे बड़ा गुण मैंने पाया है प्रभाव व प्रसाद। उनका शब्द-सामर्थ्य बाण की याद दिलाता है। उनके गाने का अपना अनोखा ढङ्ग है। श्रोता मन्त्र-मुग्ध हो जाता है। सोहनलाल जी दुर्बलता, पीड़ा, रोदन, आँसू के नहीं, जीवन, उत्साह, तारुण्य, वेग, प्रभाव व बल के कवि हैं। उनमें वेदना है, पर वह व्यक्तिगत नहीं, वह 'कसक' में नहीं, ओज में ध्वनित होती है। महादेवी, 'नवीन', 'प्रेमी' की पीड़ा और व्यथा व्यक्ति में से जन्म पाकर सामाजिक बनती है। अतएव उसमें एक व्यक्तिगत व रागात्मक अपील रहती है। सोहनलाल जी की व्यथा का उद्गम राष्ट्र से होता है और उसकी अभिव्यक्ति भावात्मक तथा विधायक होती है।

द्विवेदी जी का कवि युग के प्रति वफ़ादार है। जो कवि अपने आपके प्रति सच्चा रहता है वह सबके प्रति सच्चा रह सकता है। सोहनलाल जी को मैं युग-कवि मानता हूँ। गांधी जी ने युग की आत्मा को प्रकाशित किया है इसलिए वे 'युगावतार' हैं। सोहनलाल जी ने युग के स्वर में स्वर मिलाया है अतः वे युग-कवि हुए। गांधीवाद में बाह्य कम, आंतर अधिक है। वह साधना चाहता है, खानापुरी नहीं। वाणी नहीं, मौन उसके ज़्यादा निकट है। सोहनलाल जी ने जितना गांधी के प्रभाव को ग्रहण किया है, उतना शायद प्रकाश को नहीं। उनका कवि गांधी से जितना प्रभावित है उतना शायद उनका व्यक्ति नहीं। पर क्या कवित्व व्यक्तित्व से भिन्न रह सकता है?

सोहनलाल जी सुरुचि, उच्च संस्कृति व उदात्त भावों के धनी हैं। उनके चित्रों में मौलिकता भले कम हो, पर सजीवता ग़ज़ब की है। शब्द तो मानो उनके सामने हाथ जोड़े खड़े हों। यदि प्रसन्नता, सजीवता, प्रभावोत्पादकता कविता का प्रधान गुण हो, तो सोहनलाल जी इसमें लाजवाब हैं।

'भैरवी' का गायक स्वस्थ मानस का कवि है, वह यौवन का मादक नहीं, तेजस्वी कवि है। उसमें विलास नहीं, उल्लास है। उसमें कहीं प्रणय का काँटा नहीं चुभ रहा है, बल्कि सेवा व भक्ति की सुगन्ध चारों ओर फैलती है। प्रगतिशीलता के नाम पर अपने दिल की जलन बुझाने, प्रेम व कला के नाम पर अश्लीलता की पूजा करने, व स्वतंत्रता के नाम पर निरंकुशता को गले लगाने के इस युग में मन को स्वस्थ-बलिष्ठ बनानेवाली रस-सामग्री के दाता सोहनलाल जी जैसे शिष्ट कवि ग़नीमत हैं।

———

गांधीवाद के कवि: श्री सोहनलाल द्विवेदी

[श्री सुमित्रानन्दन पन्त]

गांधीवाद के भीतर से श्री सोहनलाल जी द्विवेदी अपना राष्ट्रीय काव्य खादी के ताने-बाने से बुनकर हिन्दी-संसार को भेंट कर रहे हैं। 'भैरवी' उनकी कविताओं का प्रथम संग्रह है, जिसमें राष्ट्रीय जागरण के वंदना-गीतों में कवि ने अपना भी श्रद्धापूर्ण स्वर मिलाया है। राष्ट्रीय जागरण के इस प्रभात में मैं उनकी 'भैरवी' के कोमल प्राणपदों का मुक्त हृदय से स्वागत करता हूँ।

गोरे, लंबे, स्वस्थ-सुडौल शरीरवाले प्रसन्नमुख भावुक इस युवक कवि के खादी के स्वर अपनी एक विशेषता रखते हैं। उनकी कविता सुविज्ञ साहित्यिकों की ही नहीं, जनता-जनार्दन की भी प्रिय वस्तु है। उनकी सरल प्रसादमयी भाषा, सहज भावुकता, सुबोध कल्पना तथा विश्वास और भावनामयी देशभक्ति जनता के लिए विशेषतः आकर्षक है।

श्री मैथिलीशरण गुप्त, 'भारतीय आत्मा' और नवीन जी ने भी राष्ट्रीय कविता की है। श्री सोहनलाल जी इनसे यहाँ पर भिन्न हैं। मैथिली बाबू ने प्रेरणा पौराणिक संस्कृति से और उससे भी अधिक पौराणिक कला से पाई है। और गांधीवाद उसे एक प्रकार से प्रश्रय ही देता है। 'भारतीय आत्मा' में राष्ट्रीय भावुकता है और नवीन जी के काव्य में राष्ट्रीय भावना तो है ही, साथ ही गांधीवाद के भीतर से नवीन मानवता की भी

कल्पना मिलती है, यद्यपि उसके आधार बौद्धिक एवं वास्तविक न होकर भावना-प्रधान ही हैं। इन तीनों कवियों ने 'गांधी-वाद' को वाणी देने का प्रयत्न किया है, क्रमशः पुनर्जागरण-द्वारा, भावुकता-द्वारा, अपनी भावना-कल्पना-द्वारा।

तो क्या ये तीनों कवि गांधीवाद के सफल कवि कहे जा सकते हैं? गांधीवाद का भावात्मक अथवा सांस्कृतिक स्वरूप अभी भविष्य के गर्भ में है, वह वर्तमान के राजनीतिक तथा सामाजिक संघर्षों और विद्रोहों से दबा हुआ है।

श्री सोहनलाल जी ने उस भावतत्व को असमय वाणी देने का व्यर्थ प्रयत्न नहीं किया है। उन्होंने अहिंसात्मक क्रान्ति को, विद्रोह को, तथा सुधारवाद को अत्यन्त सरल, सबल और सफल ढंग से काव्य बनाकर 'जन-साहित्य' बनाने के लिए उसे मर्मस्पर्शी और मनोरम बना दिया है।

गांधीवाद के वर्तमान स्वरूप को अभिव्यक्ति देने के लिए कवि ने अपनी स्वाभाविक रुचि और नैसर्गिक प्रतिभा से जिन विषयों को चुना है, उनमें से कुछ के नाम ये हैं—युगावतार गांधी, खादीगीत, गाँवों में, किसान, दांडीयात्रा, त्रिपुरी कांग्रेस, बढ़ो अभय जयजयजय! राष्ट्रीय निशान आदि।

ये सभी रचनायें भाषा, भावोच्छ्वास, छंदविन्यास और जन-साहित्य की दृष्टि से उत्तम सृष्टि हैं। भाषा कहीं-कहीं तो सरलता की सीमा तक पहुँच गई है। जैसे 'गाँवों में' शीर्षक कविता में—

अपनी उन रूपकुमारी में
जिनके नित रूखे रहें केश,
अपने उन राजकुमारों में
जिनके चिथड़ों से सजे वेश

अंजन को तेल नहीं घर में
कोरी आँखों के हावों में
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ
वह बसा हमारे गाँवों में

है जिनके पास एक धोती
है वही दरी उनकी चादर,
जिससे वे लाज समेट सदा
निकला करतीं घर से बाहर
पुरबधुओं का क्या हो शृंगार
जो बिका रईसों - रावों में
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ
वह बसा हमारे गाँवों में

सोने-चाँदी का नाम न लो
काँसे - फूले के कड़े - छड़े
मिल जाँय बहूरानी को तो
समझो उनके सौभाग्य बड़े
राँगे की काली बिछियों में,
पति के सुहाग के भावों में
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ
वह बसा हमारे गाँवों में

युगावतार गांधी को किस स्वरूप में कवि ने प्रतिष्ठित किया है !—

चल पड़े जिधर दो डग मग में,
चल पड़े कोटि पग उसी ओर,
पड़ गई जिधर भी एक दृष्टि,
गड़ गये कोटि दृग उसी ओर

जिसके सिर पर निज धरा हाथ,
उसके सिर रक्षक कोटि हाथ,
जिस पर निज मस्तक झुका दिया,
झुक गये उसी पर कोटि माथ,

हे कोटिचरण, हे कोटिमाथ,
हे कोटिरूप, हे कोटिनाम,
तुम एक मूर्ति, प्रतिमूर्ति कोटि
हे कोटिमूर्ति, तुमको प्रणाम !

युग बढ़ा तुम्हारी हँसी देख
युग हटा तुम्हारी भ्रकुटि देख
तुम अचल मेखला बन भू की
खींचते काल पर अमिट रेख

तुम बोल उठे, युग बोल उठा
तुम मौन बने, युग मौन बना,
कुछ कर्म तुम्हारे संचित कर,
युगकर्म जगा, युगधर्म तना

युगपरिवर्तक, युगसंस्थापक,
युगसंचालक हे युगाधार!
युगनिर्माता, युगमूर्ति तुम्हें
युग-युग तक युग का नमस्कार!

कवि का 'खादीगीत' पर्याप्त प्रसिद्धि पा चुका है, और उसके कुछ अंश का रेकार्डिंग भी हो चुका है—

खादी के धागे - धागे में
अपनेपन का अभिमान भरा
माता का इसमें मान भरा
अन्यायी का अपमान भरा

खादी की रजत चंद्रिका जब
आकर तन पर मुसकाती है,
तब नवजीवन की नई ज्योति
अन्तरतम में जग जाती है,

खादी में कितने ही नंगों
भिखमंगों की है आस छिपी
कितनों की इसमें भूख छिपी.
कितनों की इसमें प्यास छिपी

लोकशिराओं में नवजीवन का रक्त संचार करने को स्पंदनोत्सुक खादी को वाणी दिये बिना गांधीवाद का सांप्रतिक स्वरूप निराधार ही हो जाता है।

'दांडीयात्रा' और 'त्रिपुरी कांग्रेस' सजीव मार्मिक भावना में ओत-प्रोत सुन्दर काव्य के नमूने हैं।

'दांडीयात्रा' में कवि की भावना का उद्ग्रीव सिंधु मुखर हो उठा है !

'त्रिपुरी कांग्रेस' में कवि ने अपनी कल्पना के बल से धरणी के स्तर को चीरकर पुरातन कोशल के साम्राज्य के ध्वंस को फिर से उठा दिया है !

त्रिपुरी क्या बसी अनूपम छवि,
जैसे हो त्रिपुरी राज्य उठा,
धरणी के स्तर को चीर,
पुरातन कोशल का साम्राज्य उठा
उठ आये उसके सिंहद्वार
उठ आईं गुंबद मीनारें,
मेहराब उठे, शुचि शृङ्ग उठे,
ध्वज, तोरण कलसी मीनारें

जय जय जय, प्रयाण-गीत, जय राष्ट्रीय निशान भी सबल एवं स्फूर्ति-दायिनी रचनायें हैं।

फूँको शंख ध्वजायें फहरें
चले कोटि सेना, घन घहरें
मचे प्रलय !
बढ़ो अभय !
जय जय जय !
नित पददलित प्रजा के क्रंदन
अब न सहे जाते हैं बन्धन

करुणामय !
बढ़ो अभय !
जय जय जय !

बलि पर बलि ले चलो निरंतर
हो प्राची में आज युगान्तर

हे बलमय !
हे बलिमय !
बढ़ो अभय !

अमर सत्य के आगे थर-थर
विश्व कँपे, काँपे विश्वम्भर

हे प्रणमय !
हे व्रणमय !
बढ़ो अभय !

राजतंत्र के इस खँडहर पर
प्रजातंत्र के उठें नवशिखर

जनगण जय !
जनमत जय !
बढ़ो अभय !

श्री सोहनलाल जी से हिन्दी-जगत् भली भाँति परिचित है। मेरा विश्वास है कि उनकी राष्ट्रीय प्रभात सूचक 'भैरवी' को वह यथेष्ट स्थान और सम्मान देगा।

सम्मतियाँ

मैं चाहता हूँ ऐसी कविता का देश के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक प्रचार हो।

—मालवीय जी महाराज

श्री सोहनलाल द्विवेदी की लिखी हुई रचनायें मैंने सुनीं। वे मुझे बहुत पसन्द आईं। इनसे जनता में अच्छे भाव पैदा होंगे।

—पंडित जवाहरलाल नेहरू

वर्तमान कविता के क्षेत्र में पंडित सोहनलाल द्विवेदी का विशेष स्थान है, और वह उल्लेखनीय है। इनकी कविता सीधे हृदय से निकलती हुई हमारे मर्म को स्पर्श करती है, और चिरस्थायी प्रभाव उत्पन्न करती है। श्री द्विवेदी जी को जीवन के मर्मस्पर्शी पक्ष की पूरी परख है, इनकी सफलता का सबसे बड़ा कारण यही है। वे अपनी कविता-द्वारा जनता को रसमग्न करते रहें, यही मेरी मंगलकामना है।

—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

श्री सोहनलाल द्विवेदी को मुझे निकट से जानने का अवसर मिला है, और मैं उनके सम्बन्ध में कुछ निश्चितरूप से कह सकता हूँ। उन्होंने अपनी रचनाओं से हिन्दी-साहित्य की श्रीअभिवृद्धि की है, इसमें सन्देह नहीं।

—श्री श्यामसुन्दरदास

राष्ट्रीय चेतना को आपने काव्य का सच्चा रूप दिया है।

—डा० बड़थ्वाल, एम० ए०, एल-एल० बी०, डी० लिट०

प्रिय द्विवेदी जी,

भैरवी मुझे दिल्ली में मिली।

भाई महादेव देसाई और वियोगी हरि जी दोनों उस समय पास थे।

वियोगी जी ने कुछ कवितायें पढ़कर सुनाईं। मुझे तो अच्छी लगीं ही, किन्तु वियोगी जी स्वयं कवि हैं, उन्होंने आपकी कविताओं की अच्छी प्रशंसा की।

महादेव भाई को भी कई कवितायें बहुत पसन्द आईं और वह पुस्तक भी महादेव भाई ले गये। यह सब जानकर आपको प्रसन्नता होगी, इसलिए लिख रहा हूँ।

'डायरी के कुछ पन्ने' भिजवा रहा हूँ। —घनश्यामदास बिड़ला

भैरवी का कवि सफल है।

उसकी कवितायें सहस्रों कंठों से गूँजती हैं।

सन् १९३० की बात है, मैं एक प्रभातफेरी में 'खादी के धागे-धागे में अपनेपन का अभिमान भरा' आदि गीत उषःकाल के मधुर क्षणों में अपने संगी-साथियों के साथ गाता था।

मैं स्वयं उसके साथ आनन्दविभोर हो उठता था। उज्जैन की कितनी ही 'फेरियों' में यह गीत उस समय लोकप्रिय हो रहा था।

और जहाँ-जहाँ मैं गया, मुझे इस गीत को सहस्रों कंठ से सुनने का अवसर मिला।

ऐसे मधुर, लोकप्रिय, राष्ट्रीय गीतों की इस भैरवी को पाकर पढ़कर मैं धन्य हुआ हूँ। —सूर्यनारायण व्यास

भैरवी में जो वर्णन की प्रसन्नशैली है, श्रद्धा और भक्ति का सहज-सरल (आनसाफिस्टिकेटेड) वेग, जो झरने के समान प्रसन्न है, तूफ़ान के समान उद्दाम नहीं, वह मुझे बड़ा आकर्षक जान पड़ता है।

खादी-गीत, बापू और मालवीय जी आदि के संबंध में जो रचनायें हैं उनमें कविता का वास्तविक स्वरूप प्रकट हुआ है।

वहाँ कविता खिले हुए फूल के समान सुन्दर है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी

भैरवी की कवितायें भारतीय राष्ट्रीयता की गति की ताल पर रची गई हैं। उनमें सामयिकता है। व्यथा जगाने से ऊपर वे प्रभाव भी देना जानती हैं। आत्मसंस्कार से अधिक प्रवृत्ति जागरण उनका लक्ष्य है।

वह कुछ कराना चाहती हैं।

उनमें आदेश का स्वर है।

एक प्रबल आत्म-विश्वास के साथ वह आदेश का स्वर उन कविताओं में फूँका गया है।

यह बड़ी बात और कुछ ख़तरे की बात है।

ख़तरा सब नहीं उठाते।

आप हिन्दी-पाठक की कृतज्ञ प्रशंसा और आलोचक की सजगचिंता के पात्र हैं।

—जैनेन्द्रकुमार।

"भैरवी" हाथ में लेते ही मुझे "साकेत" की ये पंक्तियाँ याद आगईं—

'कौन भैरव राग कहता है इसे,
श्रुति पुटों से प्राण पीते हैं जिसे?'

और मुझे सन्तोष है कि मेरा अनुमान सत्य निकला। मेरा विश्वास है, आपका यह संदेश दूर-दूर तक फैलेगा और इस जागरण काल में उससे पवित्रता का, उत्साह का, नवजीवन का प्रसार होगा।

—सियारामशरण गुप्त

वासवदत्ता

कविता शैली की दृष्टि से यह हिंदी के लिए एक नई चीज़ है। वासवदत्ता की प्रत्येक कविता में छन्द और तुक के न रहते हुए भी एक अद्भुत गति और हृदय को रमाने की शक्ति है। कवि अपने हृद्गत भावों को सबसे अधिक उपयुक्त शब्दों में व्यक्त करके एक विचित्र आकर्षण पैदा कर देता है। भाषा पर उसका पूरा अधिकार है। कहीं-कहीं तो वह एक ही भाव को व्यक्त करने में ओज लाने के लिए एक शब्द के ऊपर दूसरे शब्दों की ऐसी झड़ी लगा देता है कि वस्तुस्थिति का प्रभाव हमारे हृदय पर आवश्यकता से अधिक गहरा पड़ता है। एक उदाहरण देखिए अलंकारों पर कैसी तह की तह जमाई है —

सुषमा की प्रतिमा
एक तरुणी दिवांगना-सी,
कवि कल्पना-सी,
विधि की अनूप रचना-सी
सुन्दरी प्रणय अभिलाषा-सी
मादक मदिरा-सी
मोहक इन्द्रधनु-सी,

कहीं-कहीं यह ज़ोर एक ही अर्थ रखनेवाले कई शब्दों का एक साथ प्रयोग करके भी दिखाया गया है।

चकित से, विस्मित से,
भ्रमित से, अवाक् से,

ऐसे स्थलों पर कविता का सरल स्वाभाविक प्रवाह मानो पत्थरों से टकराकर बढ़ने लगता है। द्विवेदी जी की भाषा की एक विशेषता यह भी

है कि वे एक-सी ध्वनिवाले अनेक शब्दों का साथ-साथ प्रयोग जगह-जगह करते चलते हैं, जिससे अनुप्रास के अभ्यासी कानों को पर्याप्त मात्रा में तृप्ति मिलती है, और भाषा पर कवि का अधिकार भी प्रकट हो जाता है। देखिए—

तरुण अरुण करुण श्री से वरुण सम

अथवा,

गृह-गृह आमंत्रण निमंत्रण तथागत का था,

इससे कविता में गति आ जाने से रोचकता अधिक बढ़ गई है। मुझे तो ऐसे स्थल कुछ इस प्रकार के लगते हैं जैसे मार्ग पर निरन्तर चलते हुए पथिक के मार्ग में शीतल पेड़ों की छाया पड़ जाती हो।

वासवदत्ता की कविताओं के बाह्य रूप पर ही यहाँ विचार किया है। उसके वर्ण्य विषय के सम्बन्ध में केवल इतना ही कहूँगा कि भारतीय संस्कृति की महत्ता प्रतिपादित करने के विचार से भारतीय इतिहास और प्राचीन महाकाव्यों से कुछ व्यक्ति लेकर कवि ने उनके चरित्र का दिग्दर्शन कराया है। अपने इस कार्य में उसे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

—कर्मवीर

इसमें सन्देह नहीं, कवि ने मूल्य कथानकों में अपनी भाषा और स्थल-स्थल में कल्पना का मोहक रंग भरा है, जहाँ वासवदत्ता, उर्वशी और कुणाल में कवि ने नारी को पुरुष के प्रति आधीन होते हुए बतलाया है वहाँ सरदार चूड़ावत में पुरुष को स्त्री के प्रति विवश होते हुए दिखलाया है। साथ ही स्त्री का चरम आदर्श भी प्रस्तुत किया गया है। 'वासवदत्ता' की रचनाओं में चित्रात्मकता, ओजस्विता, गतिशीलता और प्रौढ़ता है। हमारा विश्वास है काव्य-जगत् में उसका समुचित सम्मान होगा।

—विशाल भारत

4/